6-3

नाडी-विज्ञानम्



चौखम्भा ओरियन्टालिया

वाराणसी (भारत)

॥ श्रीः ॥

जयकृष्णदास आयुर्वेद ग्रन्थमाला

२

महर्षिकणाद-कृतं

नाडी-विज्ञानम्

'विद्योतिनी'-भाषाटीकासमुपेतम्

व्याख्याकार

डॉ० इन्द्रदेव त्रिपाठी

आयुर्वेदाचार्य, बी. आई. एम. एस., डी. एस-सी. (आ०)

भूतपूर्व चिकित्साधिकारी (उ० प्र०)



चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक

वाराणसी दिल्ली

प्रकाशक
चौखम्भा ओरियन्टालिया
पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ३२
गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–२२१००१ (भारत)
टेलीफोन : ६३३५४ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव

शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर
दिल्ली–११०००७ फोन : २२१६१७

संस्करण : द्वितीय, १९८२
मूल्य : रु० 6–००

इसी लेखक की
नाडी-परीक्षा
द्वि० संस्करण
मूल्य रु० ३–००

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्भा भारती अकादमी
आकर ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक
गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : ६३३५४

मुद्रक—श्रीगोकुल मुद्रणालय, वाराणसी–२२१००१

JAIKRISHNADAS AYURVEDA SERIES
No. 2

NĀḌĪ-VIJÑANA

OF

MAHARṢI KAṆĀDA

Edited with
The 'Vidyotinī' Hindi Commentary

By

Dr. INDRADEV TRIPATHI
Āyurvedāchārya, B. I. M. S., D. S-c. (A.)
Ex. Medical Officer (U. P.)

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
A House of Oriental and Antiquarian Books
VARANASI : DELHI

Publishers :

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA

A House of Oriental and Antiquarian Books

P. O. Chaukhambha, Post Box No. 32

Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane

VARANASI-221001 (India)

Telephone : 63354 Telegram : Gokulotsav

Branch—Bungalow Road, 9 U. B. Jawahar Nagar, DELHI-110007 (India) [Phone : 221617]

Second Edition 1982

Price Rs.[redacted] 6/-

Printers—Srigokul Mudranalaya, Varanasi

आत्म-निवेदन

संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों ने महर्षिकणाद का समय ईशापूर्व ४०० सौ से ५०० सौ के बीच माना है। ये वैशेषिक दर्शन के आद्य प्रवर्तक थे। इन्होंने वैशेषिक[1] दर्शन पर अनेक ग्रन्थ लिखें हैं। महर्षिकणाद प्रभास पत्तन (काठियावाड़) के निवासी शोमशर्मा के शिष्य और शिव के अवतार[2] थे। खेतों में पड़े हुए अन्न के कणों को खा कर अपना जीवन निर्वाह करते थे अतः उनका नाम कणाद (कणभुक्) पड़ा। या कणभुक् अर्थात् अणुजीवी होने के कारण उनका यह नामकरण हुआ। क्योंकि भारतीय दर्शन में सर्वप्रथम उन्होंने ही परमाणुवाद का प्रवर्तन किया था।

प्रस्तुत विषय "नाड़ी-विज्ञान" है। महर्षिकणाद ने अपने को स्वयं इसके रचयिता के रूप में स्वीकार किया है[3]। नाड़ी-विज्ञान की परम्परा मध्यकाल से स्वीकार करते हैं। इसका व्यापक प्रसार योगशास्त्र एवं सिद्ध सम्प्रदाय से हुआ है। काल विभाग के अनुसार मध्यकाल ८ वीं शताब्दी[4] से माना जाता है। सिद्धसम्प्रदाय का भी काल ८ वीं शताब्दी है। यदि "नाड़ी-विज्ञान" नामक ग्रन्थ के रचयिता महर्षि कणाद हैं, तो नाड़ी-विज्ञान का निर्माण-काल चौथी-पांचवीं शताब्दी को मध्य होना चाहिए। ग्रन्थकार ने इस विज्ञान का अध्ययन इन्द्र से किया था, इन्द्र ब्रह्मा से तथा ब्रह्मा योगिराज शंकर से। ऐसी स्थिति से नाड़ी-विज्ञान मध्यकाल के

---

१. दे० "भारतीय दर्शन", वाचस्पति गैरोला (पृ० २२४)।

२. दे० वायुपुराण।

३. आस्ते वेदः पञ्चमो वैद्यकाख्यो वेत्ता कश्चित्तस्य नास्ते महेशात्।
तस्माद्धाताऽध्यैष्ट तस्मात्तुराषाट् तस्माज्ज्ञात्वा वक्तुमर्हामि शास्त्रम्॥
—नाडी-विज्ञान, पृ० १

४. दे० आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास की भूमिका, आचार्य प्रियव्रत शर्मा।

पहले का है और इसका समय ईशा पूर्व पाँचवीं शती है तथा इसका स्रोत आयुर्वेद है। इन बातों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो रहा है कि यदि इस ग्रन्थ के रचयिता वैशेषिक दर्शनकार हैं तो नाड़ी-विज्ञान सिद्ध-सम्प्रदाय की देन नहीं है।

ऐतिहासिक परम्परा में कणाद प्राक्तवैयाकरण की शृङ्खला में भी आये हैं, यदि दर्शन तथा व्याकरण के साथ-साथ आयुर्वेद के क्षेत्र में भी इनकी उपलब्धि होती है तो कोई आश्चर्यमयी घटना नहीं मानी जायगी क्योंकि महर्षियों के लिये यह स्वतः सिद्धयोग था। ये अति प्राचीन हैं। इन्हें "नाड़ी का ज्ञान" शिव ब्रह्मा तथा इन्द्र की परम्परा से सीधे प्राप्त हुआ था।

यदि यह दुराग्रह है कि नाड़ी-विज्ञान मध्यकालीन सिद्धसम्प्रदाय की देन है तो हमें कल्पना करनी पड़ेगी कि महर्षिकणाद वैशेषिक दर्शनकार से अन्य कोई हैं जो मध्यकाल में हुए थे; जिन्होंने इसका निर्माण किया। वे किस देश के निवासी एवं किस वंशपरम्परा के थे, यह अभी अन्वेषणीय है।

नाड़ी से वात, पित्त, कफ, द्वन्द्व तथा सन्निपात के रोगों उनकी साध्यासाध्यता विशेषतः मृत्युकाल का अच्छी तरह पता चल जाता है। नाड़ी की सूक्ष्म गतियों पर विचार करने वाला चिकित्सक मृत्यु का समय, सप्ताह, दिन तथा घण्टों में ज्ञान कर सकता है; किन्तु इसके लिये मन की एकाग्रता आवश्यक है। इस ग्रन्थ में नाड़ी की विभिन्न गतियों का वर्णन विस्तारपूर्वक दिया गया है। यहाँ तक कि विभिन्न कार्यों को करने पर तथा भिन्न-भिन्न पदार्थों को खाने पर जैसी २ नाड़ी की गतियाँ होती हैं उन सबका अन्तर विस्तारपूर्वक वर्णित है। सान्निपातिक रोग एवं मृत्युकालिक नाड़ी-स्पन्दन का विवेचन यहाँ अपने ढंग का अपूर्व है। यूनानी चिकित्सा तथा एलोपैथिक चिकित्सा-पद्धति में भी नाड़ी-विज्ञान का विचार है जो भारतीय नाड़ी-विज्ञान की ही देन है। यूनानी-नाड़ी विज्ञान बिलकुल मिलता-जुलता है किन्तु एलोपैथिक नाड़ी-विज्ञान कुछ भिन्न है। प्रसंगतः दोनों प्रकार के नाड़ी-विज्ञान का दिग्दर्शन परिशिष्ट में विशेष प्रकार से किया गया है। नाड़ी का अच्छी तरह ज्ञान होने से रोग का निर्णय तथा चिकित्सा में बड़ी सुविधा होती है और दुर्घटनायें होने की सम्भावनाएँ नहीं रहती हैं।

अपने वरिष्ठ मित्र श्रीराजकुमार द्विवेदी डी.आइ.एम.एस., आयुर्वेदाचार्य सम्प्रति राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्साधिकारी नगरक्षेत्र वाराणसी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थ की सम्पन्नता में योगदान दिया है। अपने सहयोगी श्रीशोभनाथ द्विवेदी एवं श्रीभूलन पाण्डेय प्रधानमन्त्री सहायक संक्रामकरोग अधिकारी संघ का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने समय-समय पर पथ-प्रदर्शन कर अपनाया है।

सम्पादक श्रीकपिलदेव गिरि को हार्दिक धन्यवाद अर्पित है, जिन्होंने भाषा-त्रुटियों का संशोधन कर इसे रुचिकर एवं उपादेय बनाया है।

चौखम्भा ओरियन्टालिया के प्रकाशक को विशेष धन्यवाद है, जिन्होंने यथासम्भव शीघ्र प्रकाशित करने में विशेष रुचि ली है।

अन्त में विज्ञपाठकों से निवेदन है कि नाड़ी-विज्ञान केवल अध्यनमात्र का विषय नहीं है; बल्कि इसका अभ्यास एवं अनुभव अपेक्षित है जो कुछ कालसाध्य है। अतः छात्र एवं चिकित्सक वर्ग इसका अभ्यास एवं अनुभव कर अनुगृहीत करेंगे और त्रुटियों से अवगत करायेंगे ताकि भविष्य में सुधार किया जा सके। इतिशम्—

निवेदक—

इन्द्रदेव त्रिपाठी

चैत्रशुक्ल प्रतिपदा

संवत् २०३३

विषय-सूची

परिशिष्ट—१

परिशिष्ट—२

नाडी-विज्ञानम्

'विद्योतिनी'-भाषाटीकासमुपेतम्

॥ श्रीः ॥

महर्षिकणाद-कृतं

नाड़ी-विज्ञानम्

'विद्योतिनी'-भाषाटीकासमुपेतम्



मंगलाचरणम्—

यद्वक्त्रेभ्यः पञ्चसंख्यागतेभ्यो वेदा जाता ऋग्यजुःसामरूपाः ।
सायुर्वेदाथर्ववेदश्च तस्मिन्नास्तां शम्भौ श्रीकणादस्य भक्तिः ॥ १ ॥

जिसके पाँच मुखों से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा आयुर्वेद सहित अथर्ववेद उत्पन्न हुए उस भगवान् शंकर में श्रीकणाद की निश्चल भक्ति होकर रहे। अर्थात् शंकर जी ने ही सर्वप्रथम अपने पांचों मुखों से संसार में ऋग्वेद, यजुर्वेद, समावेद तथा आयुर्वेद सहित अथर्ववेद का उपदेश एवं प्रचार किया था, उस शंकर जी के लिये नमस्कार है ॥ १ ॥

वैद्यकप्रचारकाः—

आस्ते वेदः पञ्चमो वैद्यकाख्यो वेत्ता कश्चित्तस्य नास्ते महेशात् ।
तस्माद्धाताऽध्यैष्ट तस्मात्तुराषाट् तस्माज्ज्ञात्वा वक्तुमर्हामि शास्त्रम् ॥

ऋग्वेदआदि चारों वेदों के अतिरिक्त आयुर्वेद नामक पाँचवाँ वेद है और शंकर जी को छोड़ कर उसको जाननेवाला और कोई नहीं हैं। शंकर जी से ब्रह्मा ने अध्ययन किया और ब्रह्मा जी से इन्द्र ने अध्ययन किया तथा इन्द्र से पढ़ कर ही मैं कणाद इस शास्त्र को कहने योग्य हुआ हूँ ॥ २ ॥

विमर्श :—आयुर्वेद अर्थववेद का अंश है। या यों कहना चाहिए कि आयुर्वेद का मूल स्रोत अर्थववेद है उसी से आयुर्वेद का प्रणयन हुआ और सर्वप्रथम इसके प्रणेता शंकर जी हुए तथा शंकर जी से ब्रह्मा ने अध्ययन

किया, ब्रह्मा से—इन्द्र ने अध्ययन किया। इस प्रकार इन्द्र से महर्षि कणाद ने अध्ययन कर नाड़ी-विज्ञान का निर्माण किया। इस उपाख्यान से ज्ञात हो रहा है कि नाड़ी-विज्ञान आयुर्वेद के साथ ही प्रादुर्भूत हुआ। बृहत्त्रयी में इसका निरूपण सूत्ररूप में त्रिदोष के सिद्धान्त के आधार पर किया गया है। जब त्रिदोष दुष्टि के कारण तथा उसके उपद्रव का ज्ञान हो जाता है, उसके अनुसार नाड़ी की गति को लक्षण के आधार पर जान कर रोग का निर्णय किया जाता है। इसी को आधार मान कर महायान सम्प्रदाय तथा सिद्ध-सम्प्रदाय ने नाड़ी का स्वरूप रोगों के आधार पर उतार कर नाड़ी-विज्ञान का स्वरूप उपस्थित किया है और तभी से यह रोगनिदान का साधन माना गया है। (आयुर्वेद पाँचवाँ वेद है और उससे नाड़ी-विज्ञान तथा रसायनविज्ञान का ही बोध होता है क्योंकि बृहत्त्रयी में नाड़ीविज्ञान का उल्लेख नहीं मिलता। यह भी कि योगशास्त्र से नाड़ीविज्ञान की परम्परा चली) इत्यादि बातें समझ में नहीं आतीं; क्योंकि सर्वप्रथम आयुर्वेद को प्रचारक महादेव जी हैं, तो उन्होंने केवल नाड़ीविज्ञान तथा रसशास्त्र का ही उपदेश किया। आयुर्वेद के शेषभाग का प्रचारक कौन होगा? जब यह निर्णीत है कि अथर्ववेद से ही आयुर्वेद का प्रादुर्भाव हुआ है। इससे यह मानना पड़ेगा कि आयुर्वेद के साथ ही नाड़ीविज्ञान का उपदेश हुआ, किन्तु नाड़ीविज्ञान का विकास न हो सका। बृहत्त्रयी में इसका उपदेश सूत्र रूप में हुआ और महायान तथा सिद्ध सम्प्रदाय ने इसका विस्तार किया—यह मानना नाड़ी-विज्ञान को अनार्ष मानने की अपेक्षा अधिक उत्तम एवं युक्तियुक्त है

नाडीनां संख्या मूलस्थानञ्च—

सार्द्धत्रिकोट्यो नाड्यो हि स्थूलाः सूक्ष्माश्च देहिनाम्।
नाभिकन्दनिबद्धास्तास्तिर्यगूर्ध्वमधः स्थिताः ॥ ३ ॥

नाड़ियों की संख्या तथा उनका मूल स्थान—प्राणधारियों के शरीर में साढ़े तीन करोड़ मोटी तथा पतली नाड़ियाँ होती हैं। वे नाभिकन्द से बंधी हुई हैं और वे नाभिकन्द में तिरछी, ऊपर तथा नीचे की ओर संलग्न होकर स्थित हैं। अर्थात् नाभिकन्द से ही स्थूलरूप से निकल कर ऊपर तथा बगलों की ओर जाकर शाखा, प्रशाखाओं में विभक्त होकर सम्पूर्ण शरीर में फैल गई हैं।

इनकी संख्या साढ़े तीन करोड़ है । अन्य तन्त्रों में इनकी संख्या भिन्न है । गणना वैशिष्ट्य से कोई विरोध नहीं है ॥ ३ ॥

आकृतिकर्मभेदेन नामभेदः—

द्वासप्ततिसहस्रन्तु तासां स्थूलाः प्रकीर्त्तिताः ।
देहे धमन्यो धन्यास्ताः पञ्चेन्द्रियगुणावहा ॥ ४ ॥

आकृति एवं कर्म भेद से नाम भेद—उन साढ़े तीन करोड़ नाड़ियों में बहत्तर हजार नाड़ियाँ स्थूल (मोटी) हैं जो पाँचों इन्द्रियों के गुणों को एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाती हैं । (नाभिकन्द से निकली हुई बहत्तर हजार नाड़ियाँ विभक्त होकर आँख, कान, नाक जिह्वा तथा चर्म के गुण शब्द, गन्ध रस, स्पर्श एवं अन्य गुणों को वहन करती हैं अर्थात् इन्हीं के द्वारा इन्द्रियाँ अपने-अपने गुणों को ग्रहण करती हैं) ॥ ४ ॥

तासां च सूक्ष्मसुषिराणि शतानि सप्तस्युर्यानि यैरसकृदन्नरसं वहद्भिः
आप्याय्यते वपुरिदं हि नृणाममोषामम्भः स्रवद्भिरिवसिन्धुशतैः समुद्रः॥

इन बहत्तर हजार नाड़ियों में सात सौ नाड़ियाँ हैं जो सूक्ष्म छिद्रवाली, होती हैं । ये सात सौ नाड़ियाँ अन्नरस को वहाकर शरीर को निरन्तर सींचती हुई तृप्त एवं जीवित रखती हैं, अर्थात् इन्हीं के द्वारा ही शरीर का प्रत्येक भाग सींचा जाता है जिससे शरीर के अवयव पुष्ट होते हैं । वैसे ही ये नाड़ियाँ शरीर को सींचती हैं जैसे बहती हुई सैकड़ों नदियाँ समुद्र के जल में प्रविष्ट होकर समुद्र को परिपूर्ण करती हैं ॥ ५ ॥

अपादतः प्रततगात्रमशेषमेषामामस्तकादपि च नाभिपुरःस्थितेन ।
एतन्मृदङ्ग इव चर्म्मचयेन नद्धं कायं नृणामिह सिराशतसप्तकेन ॥ ६ ॥

मस्तक से लेकर पैर तक फैले हुए मनुष्य के शरीर के अवयव नाभिकन्द-स्थित सात सौ सिराओं से बंधे हुए हैं; जैसे, मृदङ्ग एक तरफ से दूसरे तरफ तक पतले चमड़े की पट्टियों से बंधा रहता है । अर्थात् जैसे पतले चमड़े की पट्टियों से मृदङ्ग एक छोर से दूसरे छोर तक बँधा रहता है; वैसे ही मनुष्यों का शरीर भी नाभिकन्द से निकले हुए सात सौ सिराओं से ऐसा बँधा हैं

जिससे शरीर के अवयव अपने-अपने काम कर सकें। नाभिकन्द से निकली हुई ये सात सौ सिरायें ऊपर, नीचे, बगल में फैलकर सिर से लेकर पैर तक अवयवों को यथास्थान स्थित कर अपने-अपने काम को कराने में समर्थ होती हैं ॥ ६ ॥

परीक्षणीया नाडी—

शतसप्तानां मध्ये चतुरधिका विंशतिः स्फुटास्तासाम् ।
एका परीक्षणीया या दक्षिणकरचरणविन्यस्ता ॥ ७ ॥

परीक्षा करने के योग्य नाड़ी—पूर्वोक्त सात सौ सिराओं में से चौबीस नाड़ियाँ स्पष्ट (साफ-साफ) हैं अर्थात् स्पष्ट रूप से मालूम पड़ती हैं। इन चौबीस नाड़ियों में से केवल एक ही नाड़ी परीक्षा करने के योग्य है जो दाहिने हाथ तथा पैर में फैली हुई है। (सुश्रुत के अनुसार नाभिकन्द से चौबीस नाड़ियाँ निकलती हैं जिनमें से दश ऊपर, दश नीचे को तथा चार तिरछी गई हुई हैं। इन चौबीस नाड़ियों में से एक ही नाड़ी परीक्षा के योग्य है जो दहिने हाथ तथा पैर को गई है। (कभी-कभी मरणासन्न अवस्था में हाथ की नाड़ी फड़कती हुई नहीं जान पड़ती। उस समय पैर नाक, कण्ठ तथा लिङ्ग आदि स्थानों की नाड़ी देखकर जीवन का ज्ञान करते हैं) ॥ ७ ॥

तिर्यक्कूर्मो देहिनां नाभिदेशे वामे वक्त्रं तस्य पुच्छं च याम्ये ।
ऊर्ध्वे भागे हस्तपादौ च वामौ तस्याधस्तात् संस्थितौ दक्षिणौ तौ ॥८॥

मनुष्यों के नाभि के पास कूर्म नाड़ी रहती है। (कूर्म नाड़ी उस स्थान को कहते हैं जहाँ कछुए की आकृति का एक स्थान बना हुआ है और तिरछे भाव से स्थित है)। वह तिरछेभाव से स्थित है और उसका सिर बाईं ओर तथा पूँछ दाहिनी ओर बायें हाथ-पैर ऊपर की ओर तथा दाहिने हाथ-पैर नीचे की ओर है। यह कूर्म पुरुषों में अधोमुख तथा स्त्रियों में ऊर्ध्वमुख रहता है ॥ ८ ॥

वक्त्रे नाडीद्वयं तस्य पुच्छे नाडीद्वयं तथा ।
पञ्च पञ्च करे पादे वामदक्षिणभागयोः ॥ ९ ॥

पूर्वोक्त कूर्म के मुख में दो नाड़ियाँ तथा पूँछ में दो-दो नाड़ियाँ एवं पाँच नाड़ियाँ दाहिने हाथ, पाँच नाड़ियाँ दाहिने पैर, पाँच नाड़ियाँ बायें हाथ और पाँच नाड़ियाँ वायें पैर में हैं। अर्थात् बायें हाथ तथा पैर से निकल कर दश-

नाड़ियाँ ऊपर को, दाहिने हाथ एवं पैर से निकलकर नीचे को तथा मुख एवं पूँछ से निकलकर तिर्यक् (बगलों में) गई हैं। (इस प्रकार नाभिचक्र से चौबीस नाड़ियाँ निकलती हैं) ॥ ९ ॥

वातं पित्तं कफं द्वन्द्वं सन्निपातं रसं त्वसृक्।
साध्यासाध्यविवेकञ्च सर्वं नाडी[1] प्रकाशयेत् ॥ १० ॥

वात, पित्त, कफ प्रत्येक का क्षय, वृद्धि तथा प्रकृतिस्थ द्विदोष (वात-पित्त, वात-कफ, पित्त-कफ) का प्रकोप तथा सन्निपात (वात, पित्त, कफ तीनों दोष) का प्रकोप, रस तथा रक्त की अधिकता या न्यूनता तथा साध्य और असाध्य रोगों का-विशेष कर सन्निपात का–ज्ञान, ये सब नाड़ी प्रकाश करती है। अर्थात् चिकित्सक नाड़ी देखकर इन बातों का पता लगा लेता है ॥ १० ॥

सव्येन रोगधृतिकूर्परभागभाजाऽऽ-
पीड्याथ दक्षिणकराङ्गुलिकात्रयेण ।
अङ्गुष्ठमूलमधिपश्चिमभागमध्यं
नाडीं प्रभञ्जनगतिं सततं परीक्षेत् ॥ ११ ॥

चिकित्सक बायें हाथ से रोग को धारण करनेवाले कूर्पर (कोहनी) के अन्दर के भाग को मर्दनकर दाहिने हाथ के तीन अंगुलियों से अंगूठे के मूल के नीचे, मध्य भाग में वायु के समान गमन करनेवाली नाड़ी की निरन्तर परीक्षा करे। (अर्थात् बायें हाथ से कूर्पर संन्धि, कोहनी के अन्दर की ओर का भाग मर्दन कर यानी आगे पीछे कर नाड़ी का मार्ग साफ कर कोहनी को पकड़े रहे और दाहिने हाथ के तीनों अङ्गुली तर्जनी, माध्यमा तथा अनामिका) से अंगूठे के नीचे (एक अङ्गुष्ठ छोड़कर) वातनाड़ी यानी वात, पित्त, कफ, द्वन्द्व तथा सन्निपात की गति का बोध करे। कलाई के दो अङ्गुल स्थान पर अङ्गुष्ठ के नीचे तर्जनी, मध्य में मध्यमा तथा अन्त में अनामिका अङ्गुली से दबा दबा कर नाड़ी की गति का अनुभव करे ॥ ११ ॥

---

१. गदाक्रान्तस्यदेहस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत ।
नाडीं मूत्रं मलं जिह्वां शब्दस्पर्शदृगाकृतीः ॥ ना० प०. ॥

परीक्षायाः कालरीतिः—

प्रातः कृतसमाचारः कृताचारपरिग्रहम् ।
सुखासीनः सुखासीनं परीक्षार्थमुपाचरेत् ॥ १२ ॥

नाड़ी परीक्षा का समय तथा नियम—प्रातःकाल ही मल-मूत्रादि नित्यक्रिया से निवृत्त होकर चिकित्सक आराम से बैठकर नित्यक्रिया से निवृत सुखपूर्वक बैठे हुए रोगी के नाड़ी की परीक्षा करे। (प्रातःकाल नाड़ी देखने की परम्परा सामान्य है। रोग की तीव्रावस्था में या आवश्यकता होने पर किसी भी समय में नाड़ी देखी जा सकती है। किन्तु रात्रि के विश्राम के बाद स्वतः नाड़ी अपनी प्राकृतिक दशा में रहती है उस समय नाड़ी-परीक्षा करने पर रोग का निर्णय सरलता से हो जाता है। दोपहर को उष्णता के कारण तथा शाम को दिन की परेशानियों के कारण नाड़ी[1] की गति चञ्चल होती है। अतः प्रातः नाड़ी देखना उत्तम है) ॥ १२ ॥

---

१. एकाङ्गुलं परित्यज्याधस्तादङ्गुष्ठमूलतः ।
यत्नवांस्तां परीक्षेत ह्यभ्यासादेव लक्ष्यते ॥
स्त्रीणां भिषग्वामहस्ते वामपादे च यत्नतः ।
पुंसां दक्षिणभागे च नाडीं विद्याद्विशेषतः ॥

नाड़ी परीक्षण का सामान्य नियम—सद्यः स्नातस्य भुक्तस्य क्षुत्तृष्णातप शीलिनः। व्यायामश्रान्तदेहस्यसम्यङ्नाडी न बुध्यते।

स्नान तथा भोजन करने के तुरन्त बाद, भूख-प्यास की अवस्था में, धूप में घूमने एवं व्यायाम करने के बाद अच्छी तरह नाड़ी का ज्ञान नहीं होता है। अतः इन अवस्थाओं में नाड़ी देखना एवं दिखाना दोनों ही निरर्थक है।

(१) नाड़ी परीक्षा करते समय चिकित्सक एवं रोगी को सावधान रहना चाहिए।

(२) रोगी को बैठाकर या लिटाकर परीक्षा करना उत्तम है। परीक्षा करते समय अंगुष्ठमूल के एक अंगुल नीचे तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका अंगुलियों से वात-आदि की परीक्षा करे। परीक्षा करते समय नाड़ी को दबाकर तथा दबाने के बाद छोड़ कर नाड़ी गति का अनुभव करे। प्रकोष्ठ की नाड़ी स्पष्ट न होने पर कनपटी एवं बाहु मूल आदि की नाड़ियों से रोग का निर्णय किया जाता है।

तैलाभ्यङ्गे च सुप्ते च तथा च भोजनान्तरे ।
तथा न ज्ञायते नाडी यथा दुर्गतमा नदी ॥ १३ ॥

तैल मालिश करने के बाद, सोतेसमय, भोजन करते समय तथा भोजन करने के बाद नाड़ी का ज्ञान अच्छी तरह नहीं होता है। जैसे, गम्भीर नदी की गति का ज्ञान नहीं होता। अर्थात् पूर्वोक्त समय में नाड़ी गम्भीर रहती है और स्वाभाविक गति छोडकर विकृत गति धारण कर लेती है ॥ १३ ॥

अङ्गुष्ठस्य तु मूले या सा नाडी जीवसाक्षिणी ।
तस्या गतिवशाद्विद्यात् सुखं दुःखं च रोगिणाम् ॥ १४ ॥

अंगूठे के मूल के नीचे जो नाड़ी गति करती है वह जीव की साक्षी[1] है अर्थात् उसी नाड़ी के फड़कने से ही ज्ञान होता है कि प्राणी जीवित है। नाड़ी की गति से ही रोगी के सुख-दुःख का या रोगी के रोग एवं उसकी साध्यासाध्यता का ज्ञान करे ॥ १४ ॥

स्नायुर्नाडी वसा हिंस्रा धमनी धामनी धरा ।
तन्तुकी जीवितज्ञा च सिरापर्यायवाचिकाः ॥ १५ ॥

स्नायु, नाड़ी, वसा, हिंस्रा, धमनी, धामनी, धरा, तन्तुकी तथा जीवितज्ञा ये सब शिरा के पर्यायवाची शब्द हैं ॥ १५ ॥

अंगुलित्रितयेन त्रिदोषज्ञानम्—

आदौ च वहते वातो मध्ये पित्तं तथैव च ।
अन्ते च वहते श्लेष्मा नाडिकात्रयलक्षणम् ॥ १६ ॥

तीन अंगुली से त्रिदोष ज्ञान—अंगूठे के नीचे एक अंगुल छोड़ कर नाड़ी पर हाथ रखते हैं। पहले वात की नाड़ी, मध्य में पित्त की नाड़ी तथा अन्त में

---

१. अस्ति प्रकोष्ठगानाडी मध्ये कापि समाश्रिता ।
जीवनाडीति सा प्रोक्ता नन्दिता तत्त्ववेदिना ॥
अङ्गुष्ठमूलसंस्था तु विशेषेण परीक्ष्यते ।
सा हि सर्वाङ्गजानाडी पूर्वाचार्यैः सभाषिताः ॥
(नाड़ी-परीक्षा ४. ५)

कफ की नाड़ी चलती है। ये तीनों नाड़ी के लक्षण हैं। (वात के चञ्चल और गतिमान होने से पहले वात नाड़ी फड़कती है, पित्त नाड़ी के उष्ण एवं चपल होने से मध्य में फड़कती है तथा कफ नाड़ी के शीतल एवं मन्द होने से अन्त में मालूम पड़ती है। अथवा नाड़ी स्वभाव से ही तर्जनी के नीचे वात नाडी, मध्यमा के नीचे पित्त नाड़ी तथा अनामिका के नीचे कफ नाड़ी चलती है ॥ १६ ॥

दोषलक्षणज्ञानम्—

वाताधिका वहेन्मध्ये त्वग्रे वहति पित्तला।
अन्ते च वहते श्लेष्मा मिश्रिते मिश्रलक्षणा ॥ १७ ॥

दोष के लक्षण का ज्ञान—जब वात दोष अत्यधिक प्रकुपित होता है तो वायु की नाड़ी (सर्पजलौकादिगति) मध्य में चलती है। पित्त के अत्यधिक प्रकुपित होने पर पित्त नाड़ी (काक, लावक की गति) आगे चलतो है तथा कफ के अत्यधिक प्रकुपित होने पर कफ नाड़ी (राजहंसादि की) अन्त में चलती है। दो दोष के प्रकुपित्त होने पर दो दोषों के लक्षण तथा सभी दोषों के प्रकुपित होने पर सभी दोषों के लक्षण उत्पन्न होते हैं ॥ १७ ॥

आदौ च वहते पित्तं मध्ये श्लेष्मा तथैव च।
अन्ते प्रभञ्जनो ज्ञेयः सर्वशास्त्रविशारदैः ॥ १८ ॥

आदि में पित्त की नाड़ी, मध्य में कफ की नाड़ी तथा अन्त में वात की नाड़ी चलती है। ऐसा शास्त्रों के विशेषज्ञों का मत है। (सतरहवाँ तथा अठारहवाँ ये दोनों श्लोक प्रक्षिप्त मालूम पड़ रहे हैं। क्योंकि ये लक्षण अन्य तन्त्रों में नहीं मिलते) ॥ १८ ॥

स्वस्था नाडी—

भूलताभुजगप्राया स्वच्छा स्वास्थ्यमयी[1] सिरा।
सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता ॥ १९ ॥

---

१. अंगुष्ठादूर्ध्वं संलग्ना समा च वहते यदि।
निर्दोषा सा च विज्ञेया नाडीलक्षणकोविदैः ॥ (नाड़ी-परीक्षा)

स्वस्थ नाड़ी का लक्षण—स्वस्थ पुरुष की निर्दोष नाड़ी केंचुआ तथा साँप की तरह स्थिर एवं धीर गति से चलती है और बलवान् होती है। अर्थात् स्वस्थ एवं निरोग पुरुष की नाड़ी स्थिर एवं मन्द होते हुए भी सबल होती है ॥ १९ ॥

प्रातः स्निग्धमयी नाडी मध्याह्नेऽप्युष्णतान्विता ।
सायाह्ने धावमाना च चिराद्रोगविवर्जिता ॥ २० ॥

स्वस्थ एवं रोग रहित व्यक्ति की नाड़ी प्रातःकाल स्निग्ध (चिकनी एवं मन्द गति) चलती है। दोपहर को उष्णता से युक्त तथा शाम को चंचल गति से चलती है। इस प्रकार की गति उन व्यक्तियों की होती है जो अधिक दिनों से निरोग होते हैं। (प्रातः काल कफ का प्रकोप, दोपहर को पित्त का प्रकोप तथा सायंकाल वात का प्रकोप सामान्यतः होता है। इसी के आधार पर प्रतःकाल मन्दगमना स्निग्ध नाड़ी कफ की होती है, मध्याह्न में चपल गामिनी उष्ण नाड़ी पित्त की होती है तथा सायंकाल वक्रगामिनी तथा तेज नाड़ी वात की होती है। यह लक्षण तब होता है जब व्यक्ति अधिक दिनों से बीमार नहीं होता है) ॥२०॥

नाड्या वातादिज्ञानम्—

वाताद्वक्रगता नाडी चपला पित्तवाहिनी ।
स्थिरा श्लेष्मवती ज्ञेया मिश्रिते मिश्रिता भवेत् ॥ २१ ॥

नाड़ी के द्वारा वात-आदि दोषों का ज्ञान—नाड़ी वात दोष के प्रकुपित होने पर वक्र गति (टेढ़ी-मेढ़ी चाल) चलती है, पित्त के प्रकोप से चञ्चल एवं फुदकती हुई गति से चलती है तथा कफ के प्रकोप होने से स्थिर एवं मन्दगति से चलती है। अर्थात् नाड़ी के वक्र (टेढ़ी-मेढ़ी) चलने से वात का प्रकोप, चंचल गति चलने से पित्त का प्रकोप तथा मन्द गति से चलने से कफ का प्रकोप समझना चाहिए। जब नाड़ी वक्र तथा चञ्चल चले तब वात-पित्त का प्रकोप, वक्र तथा स्थिर गति से चले तब वात-कफ का प्रकोप और चञ्चल एवं मन्द गति से चले तो पित-कफ प्रकोप एवं वक्र, चञ्चल तथा मन्द गति से एक साथ चले तब तीनों दोषों को प्रकुपित समझें ॥ २१ ॥

सर्पजलौकादिगतिं वदन्ति विबुधाः प्रभञ्जनेन नाडीम्[1]।
पित्तेन काक-लावभेकादिगतिं विदुः सुधियः ॥ २२ ॥
राजहंसमयूराणां पारावतकपोतयोः।
कुक्कुटस्य गतिं धत्ते धमनी कफसंभृता ॥ २३ ॥

नाड़ी-ज्ञान के विशेषज्ञों का मत है कि नाड़ी वायु के प्रकोप से साँप तथा जोंक की तरह टेढ़ी-मेढ़ी चलती है, पित्त के प्रकोप से नाड़ी कौआ, लवा तथा मेढ़क की गति के सदृश तथा चञ्चल गति से फुदक कर चलती है तथा कफ के प्रकोप से नाड़ी राजहंस, मयूर, परेवा, कबूतर तथा मुर्गी की गति की तरह गम्भीर, धीर तथा अन्दर की ओर घुसती हुई चलती है ॥ २२-२३ ॥

मुहुः सर्पगतिं नाडीं मुहुर्भेकगतिं तथा।
वातपित्तद्वयोद्भूतां तां वदन्ति मनीषिणः ॥ २४ ॥

जब नाड़ी की गति बार-बार साँप की गति तथा फिर मेढक की तरह कभी टेढ़ी-मेढ़ी तथा कभी फुदक कर चले तब वात-पित का प्रकोप हुआ है ऐसा समझे। अर्थात् वात-पित्त के प्रकोप से ऐसी नाड़ी चलती है ॥ २४ ॥

भुजगादिगतिं नाडी राजहंसगतिं तथा।
वातश्लेष्मसमुद्भूतां भाषन्ते तद्विदो जनाः ॥ २५ ॥

जब नाड़ी पहले साँप आदि की गति टेढ़ी-मेढ़ी और राजहंस आदि की तरह मन्द तथा स्थिर गति से चले तब नाड़ी-विज्ञाता वात-कफ का प्रकोप हुआ है ऐसा समझे। अर्थात् वात-कफ के प्रकुपित होने पर कभी टेढ़-मेढ़ी तथा कभी मन्द एवं स्थिर गति से नाड़ी चलती है ॥ २५ ॥

मण्डूकादिगतिं नाडीं मयूरादिगतिं तथा।
पित्तश्लेष्मसमुद्भूतां प्रवदन्ति विचक्षणाः ॥ २६ ॥

---

१. वातोद्रेके गतिं कुर्याज्जलौकासर्पयोरिव।
पित्तोद्रेके तु सा नाडी काकमण्डूकयोर्गतिम् ॥
हंसस्येव कफोद्रेके गतिं पारावतस्य वा ॥ (नाड़ी-परीक्षा, १७)

पित्त-कफ के प्रकोप से नाड़ी मण्डूक आदि की तरह फुदक कर तथा राजहंसादि की भांति मन्द एवं स्थिर गति से चलती है । अर्थात् इस प्रकार नाड़ी की गति होने पर पित्त-कफ का प्रकोप समझना चाहिए ॥ २६ ॥

सूक्ष्मा शीता स्थिरा नाडी पित्तश्लेष्मसमुद्भवा ।
कफवातोद्भवा नाडी सर्पहंसगतिर्भवेत् ॥ २७ ॥

पित्त तथा कफ के प्रकोप से नाड़ी की गति सूक्ष्म (पतली) शीतल तथा स्थिर होती है । कफ तथा वात के प्रकोप से नाड़ी कभी सर्प तथा कभी हंस की तरह (कभी टेढ़ी-मेढ़ी तथा कभी स्थिर एवं मन्द) चलती है । अर्थात् पित्त-कफ की नाड़ी छूने में पतली तथा ठंडो और गति में स्थिर एवं मन्द होती है और कफ वात की नाड़ी कभी स्पर्श करने से टेढ़ी मेढ़ी तथा गति में स्थिर प्रतीत होती है ॥ २७ ॥

त्रिदोषे नाडीगति :—

उरगादिलावकादिहंसादीनां च बिभ्रती गमनम् ।
[1]वातादीनां च समं धमनी सम्बन्धमाधत्ते ॥ २८ ॥

त्रिदोष के प्रकोप में नाड़ी की गति—त्रिदोष के प्रकोप होने पर या सन्निपात नाड़ी सर्पादि की गति पुनः लावा आदि की गति तथा बाद में हंसादि की गति की तरह गति धारण करती है । इस प्रकार पहले वात नाड़ी पुनः पित्त नाड़ी, तथा इसके बाद कफ नाड़ी चलती है। (ऐसे वात, पित्त तथा कफ के क्रम से नाड़ी टूट-टूट कर चले तो उसे असाध्य समझना चाहिए) ॥ २८ ॥

लावतित्तिरिवार्तीकगमनं सन्निपाततः ।
कदाचिन्मन्दगा नाडी कदाचिच्छीघ्रगा भवेत् ।
त्रिदोषप्रभवे रोगे विज्ञेया सा भिषग्वरैः ॥ २९ ॥

सन्निपात के प्रकोप में नाड़ी लवा, तित्तिर तथा बटेर की चालों की तरह चलती है कभी-कभी धीरे चलती है और कभी-कभी तेज गमन करती है । श्रेष्ठवैद्य

---

१. नाडी धत्ते त्रिदोषे तु गतिं तित्तिरलावयोः ।
कदाश्चिन्मन्दगा धमनी कदाचिद्वेगवाहिनी ॥ (ना. प. १८)

त्रिदोष से उत्पन्न रोग में इस गति को जाने । अर्थात् त्रिदोष में इस गति से नाडी चलती है ॥ २९ ॥

असाध्यसन्निपातजा नाडी—

मन्दं मन्दं शिथिलशिथिलं व्याकुलं व्याकुलं वा
स्थित्वा स्थित्वा वहति धमनी याति नाशं च सूक्ष्मा ।
नित्यं स्थानात् स्खलति पुनरयं अङ्गुलिं संस्पृशेद् या
भावैरेवं बहुविधविधैः [1]सन्निपातादसाध्या ॥ ३० ॥

असाध्यसन्निपातजन्य रोग में नाड़ी की गति—सन्निपात के प्रकोप में नाड़ी मन्द-मन्द, शिथिल-शिथिल, भयभीत की तरह तथा रुक रुक कर चलती है, कभी-कभी नष्ट हो जाती है और कभी-कभी सूक्ष्म चलती है । हमेशा अपने स्थान से गिर जाती है और फड़कन कलाई के ऊपर चली जाती है तथा पुनः अंगुली को स्पर्श करती है, अर्थात् नाड़ी छूट कर पुनः चलने लगती है । इस प्रकार अनेक प्रकार से नाड़ी चले तो सन्निपात की नाड़ी कहलाती है और यह असाध्य होती है ॥ ३० ॥

अन्यच्च—

अत्युच्चका स्थिराऽत्यन्तं या चेयं मांसवाहिनी ।
या च सूक्ष्मा च वक्रा च तामसाध्यां विनिर्दिशेत् ॥ ३१ ॥

दूसरे प्रकार की सन्निपात की नाड़ी—जो नाड़ी ऊँची हो (बाहर से ही दीख पड़े), अति स्थिर (बहुत ही धीमी चाल से) हो, धीमी चाल चले, मांस भक्षण की नाड़ी की तरह डंडे की जैसी मोटी तथा कठिन चले, अति सूक्ष्म भाव से चले तथा तिरछी चले तो यह सन्निपात की नाड़ी होती है और असाध्य है । अर्थात् इस प्रकार की नाड़ी चले तो असाध्य लक्षण वाली होती है ॥ ३१ ॥

---

१. क्वचिन्मदां क्वचित्तीव्रां त्रुटितां वहते क्वचित् ।
क्वचित्सूक्ष्मां क्वचित्स्थूलां नाड्यसाध्यगदे गतिम् ॥
त्वगूर्ध्वं दृश्यते नाडी प्रवहेदतिचञ्चला ।
असाध्यलक्षणा प्रोक्ता पिच्छिला अति चञ्चला ॥ (ना. प. २०-२१)

अन्यच्च—

महातापेऽपि शीतत्वं शीतत्वे तापिता सिरा ।
नानाविधगतिर्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ ३२ ॥

तीसरे प्रकार की सन्निपात की नाड़ी—यदि शरीर के अधिक गरम होने पर भी नाड़ी का स्पर्श शीतल हो और शरीर के अत्यधिक शीतल होने पर भी नाड़ी गरम हो तथा नाड़ी की गति अनेक प्रकार की हो जाय। अर्थात् कभी वात की तरह, कभी पित्त की तरह तथा कभी कफ की तरह, कभी दो दोषों की तरह तथा कभी त्रिदोष की तरह हो जाय, तो उसकी मृत्यु निःसन्देह हो जाती है ॥ ३२ ॥

अन्यच्च—

त्रिदोषे स्पन्दते नाडी मृत्युकालेऽपि निश्चला ।
ज्ञेयं सर्वविकारेषु वैद्यैः कुशलकर्मभिः ॥ ३३ ॥

सन्निपात में निश्चल हुई भी नाड़ी मृत्यु के समय में फड़क उठती है। इसी प्रकार अन्यान्य सब रोगों में भी कर्म में कुशल वैद्य समझें। अर्थात् सन्निपात हो या अन्य किसी रोग में हो, बहुत समय तक बन्द रहने के बाद नाड़ी फड़क उठे तो समझ लेना चाहिए कि उसकी मृत्यु निश्चय ही है ॥ ३३ ॥

पूर्वं पित्तगतिं प्रभञ्जनगतिं श्लेष्माणमाविभ्रतीं
सन्तानभ्रमणं मुहुर्विदधतीं चक्राधिरूढामिव ।
तीव्रत्वं दधतीं कलापिगतिकां सूक्ष्मत्वमातन्वतीं
नो साध्यां धमनीं वदन्ति मुनयो नाडीगतिज्ञानिनः ॥ ३४ ॥

चौथे प्रकार की सन्निपातनाड़ी का लक्षण—यदि नाड़ी पहले पित्त की गति (गरम तथा तेज), पुनः वात की गति (सूक्ष्म तथा टेढ़ी-मेढ़ी) और बाद में कफ की गति (मन्द-मन्द) चले, इस प्रकार वात-पित-कफ के क्रम को छोड़ कर चले, चक्र पर चढ़ी हुई की तरह कभी ऊपर की अंगुली के नीचे, कभी मध्य की अंगुली के नीचे तथा कभी अनामिका के नीचे, ये ही गति-विपर्यय-पूर्वक बार-बार विस्तार-पूर्वक चले, कभी तेज चले (पित्तगति से चले), कभी मोर की गति से चले (वक्र की गति चले) तथा कभी सूक्ष्म हो जाय (वात जन्य गति वाली हो जाय)।

इसीप्रकार यदि नाड़ी क्रम छोड़कर चले तो नाड़ी-गति के विशेषज्ञ मुनिगण उसे असाध्य कहते हैं। अर्थात् नाड़ी की इस प्रकार की गति रोग के असाध्य का सूचक है ॥ ३४ ॥

मृत्युकालज्ञानम्—

भूलताभुजगाकारा नाडी देहस्य संक्रमात्।
विशीर्णं क्षीणतां याति मासान्ते मरणं ध्रुवम् ॥ ३५ ॥

मृत्युकाल का ज्ञानसूचकनाड़ी—जिसका पुराने रोग के कारण शरीर क्षीण हो जाय और उसकी नाड़ी पतली होते हुए केचुए की तरह चिकनी, धीर तथा वक्रगति से मोटी हो, साँप की तरह कठिन, मोटी, तेज तथा वक्रगति से चलती हुई, क्षीण, (सूक्ष्म) या अदृश्य हो जाय तो उस दिन से एक महीने के अन्त में उसकी मृत्यु निश्चित है ॥ ३५ ॥

क्षणाद् गच्छति वेगेन शान्ततां लभते क्षणात्।
सप्ताहान्मरणं तस्य यद्यङ्गं शोथवर्जितम् ॥ ३६ ॥

यदि रोगी की नाड़ी कुछ समय जोर से चले किन्तु शीघ्र ही शान्त हो जाय अर्थात् नाड़ी की गति मालूम न पड़े और रोगी के शरीर में सूजन न हो तो रोगी की मृत्यु सातवें दिन हो जाती है ॥ ३६ ॥

हिमवद्विशदा नाडी ज्वरदाहेन तापिनाम्।
त्रिदोषस्पर्शभजतां तदा मृत्युर्दिनत्रयात् ॥ ३७ ॥

यदि ज्वर के दाह से व्याकुल त्रिदोष के लक्षण वाले रोगी की नाड़ी शीतल होते हुए साफ मालूम पड़े तो उसकी मृत्यु तीन दिन में होती है ॥ ३७ ॥

निरीक्ष्या दक्षिणे पादे तथा चैषां विशेषतः।
मुखे नाडी वहेन्नित्यं ततस्तु दिनतुर्यकम् ॥ ३८ ॥

असाध्य रोगी की नाड़ी दक्षिण हाथ में ही देखें विशेष कर पैर में भी देखें। यदि दोनों की नाड़ी एक समान हो; अर्थात् दोनों की नाड़ी (हाथ-पैर की नाड़ी) तर्जनी के नीचे ही हमेशा चलती हो तो रोगी की मृत्यु चार दिन में हो जाती है। (या श्वास मुख से चलती हो, नाक से नहीं; तो चौथे दिन मृत्यु होती है) ॥ ३८ ॥

गतिं भ्रमरकस्येव वहेदेकदिनेन तु ॥ ३९ ॥

यदि रोगी की नाड़ी भ्रमर की तरह (दो-तीन बार तेजी से फड़क कर गायब हो जाय पुनः थोड़ी देर में उस प्रकार चले) तो उसकी मृत्यु एक ही दिन में हो जाती है ॥ ३९ ॥

कन्दे न स्पन्दते नित्यं पुनर्लगति चाङ्गुलौ ।
मध्ये द्वादशयामानां मृत्युरेव न संशयः ॥ ४० ॥

यदि नाड़ी कन्द (अंगूठे की जड़) में प्रायः न फड़के और कभी-कभी अंगूठे के नीचे तर्जनी अंगुली में स्पर्श करे तो समझना चाहिए की रोगी की मृत्यु बारह पहर के अन्दर ही हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४० ॥

स्थित्वा स्थित्वा मुखे यस्य विद्युद्द्योत इवेक्ष्यते ।
दिनैकं जीवितं तस्य द्वितीये म्रियते ध्रुवम् ॥ ४१ ॥

जिसकी नाड़ी रह-रह कर अंगूठे के मूल में तर्जनी के नीचे बिजली की झलक की तरह जल्दी से फड़क जाय, तो वह एक दिन जीवित रहता है। दूसरे दिन अवश्य ही मर जाता है ॥ ४१ ॥

स्वस्थानविच्युता नाडी यदा वहति वा न वा ।
ज्वाला च हृदये तीव्रा तदा ज्वालाऽवधिस्थितिः ॥ ४२ ॥

नाड़ी अपने स्थान अंगूठे की मूल से खिसक गई हो और कुछ-कुछ देर में चलती हो या नहीं चलती हो तथा हृदय में तेज जलन हो तो तबतक जीवित रहता है जब तक ज्वाला रहती है। अर्थात् ज्वाला शान्त होने पर मृत्यु हो जाती है ॥ ४२ ॥

अङ्गुष्ठमूलतो बाह्ये द्व्यङ्गुले यदि नाडिका ।
प्रहरार्द्धाद् बहिर्मृत्युं जानीयाच्च विचक्षणः ॥ ४३ ॥

अंगूठे की जड़ से लेकर दो अंगुल स्थान छोड़ कर यदि नाड़ी स्पन्दन करे अर्थात् अनामिका के नीचे स्पन्दन करे तो विद्वान् पुरुष समझ ले कि उसकी मृत्यु आधा पहर के बाद हो जायगी ॥ ४३ ॥

द्व्यङ्गुलाद्बाह्यतो नाडी मध्ये रेखा बहिर्यदि ।
सार्द्धं प्रहरकान्मृत्युर्जायते नात्र संशयः ॥ ४४ ॥

यदि नाड़ी अंगूठे के मूल से एक अंगुल (तर्जनी का स्थान) छोड़कर मध्यमा तथा अनामिका के मध्य में लकीर की तरह लम्बी होकर चले तो रोगी की मृत्यु डेढ़ पहर बाद हो जायगी, इसमें संदेह नहीं है ॥ ४४ ॥

मध्ये रेखसमा नाडी यदा तिष्ठति निश्चला ।
षड्भिश्च प्रहरैस्तस्य ज्ञेयो मृत्युर्विचक्षणैः ॥ ४५ ॥

यदि नाड़ी अंगूठे के मूल से दो अंगुल स्थान (मध्यमा तथा अनामिका के नीचे) में लकीर-सी लम्बी चलती हुई बार-बार कुछ क्षण के लिये वन्द हो जाय तो छः पहर के अन्दर ही रोगी की मृत्यु हो जाती है ॥ ४५ ॥

पादाङ्गुलगता नाडी चञ्चला यदि तिष्ठति ।
त्रिभिस्तु दिवसैस्तस्य मृत्युरेव न संशयः ॥ ४६ ॥

यदि नाड़ी अंगूठे के मूल से सवा अंगुल हटकर तर्जनी तथा मध्यमा के स्थान का चतुर्थांश छोड कर चचंल गति से चले और कभी रुक जाय (अर्थात् तर्जनी अपना चतुर्थांश छोड़कर नाड़ी का स्पर्श ग्रहण करे, ऐसे ही मध्यमा अपना चतुर्थांश स्थान छोड़ कर स्पर्श ग्रहण करे) तो रोगी की तीन दिन में मृत्यु हो जाती है । इसमें संदेह नहीं है ॥ ४६ ॥

पादाङ्गुलगता नाडी कोष्णा वेगवती भवेत् ।
चतुर्भिर्दिवसैस्तस्य मृत्युरेव न संशयः ॥ ४७ ॥

जिसकी नाड़ी अंगूठे के मूल से सवा अंगुल खिसक कर कुछ उष्णता लिये तेजी से चले, तो उसकी मृत्यु चौथे दिन हो जाती है । इसमें संदेह नहीं है ॥ ४७ ॥

पादाङ्गुलगता नाडी मन्दमन्दा यदा भवेत् ।
पञ्चभिर्दिवसैस्तस्य मृत्युर्भवति नान्यथा ॥ ४८ ॥

यदि नाडी अंगूठे के मूल से सवा अंगुल खिसक कर मन्द-मन्द चाल से चले तो पांचवें दिन रोगी की मृत्यु हो जाती है । यह अन्यथा नहीं हो सकता ॥४८॥

एवं संख्यादिभेदेन नाडी ज्ञेया विचक्षणैः ।
स्वर्गेऽपि दुर्लभा विद्या गोपनीया प्रयत्नतः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार विद्वान् वैद्य संख्या आदि के भेद से नाड़ी की गति जाने । यह नाड़ी-विद्या स्वर्ग में भी दुर्लभ है अतः प्रयत्नपूर्वक छिपा कर रखना चाहिए ॥ ४९ ॥

(संख्या भेद अर्थात् आधापहर, बारह पहर, छः पहर, एक दिन, तीन दिन, चार दिन तथा एक माह मृत्यु की अवधि सूचक संख्या का संकेत है। इस विद्या को अयोग्य को देने से व्युत्क्रम होने की सम्भावना रहती है तथा अनुभव के बिना गलत बताने से विद्या की बदनामी होती है अतः छिपाने का संकेत किया गया है। वस्तुतः योग्य को बताना चाहिये जिससे गुरु-परम्परा के द्वारा यह विद्या अपने मूलभूत सिद्धान्त पर स्थिर रहे)॥ ४९ ॥

असाध्यवल्लक्षितायामपि साध्यत्वम्—

भारप्रवाहमूर्च्छाभयशोकप्रमुखकारणान्नाडी ।
सम्मूर्च्छिताऽपि गाढं पुनरपि सा जीवितं धत्ते ॥ ५० ॥

असाध्य की तरह दिखाई देने पर भी रोग की साध्यता का निर्देश—निरन्तर बोझ ढ़ोना, बेहोशी, भय, शोक आदि प्रमुख कारणों से यदि नाड़ी सूक्ष्म हो गई हो या गाढ़ (जड़) हो गई हो तो वह जीवित रहता है। अर्थात् इस प्रकार की नाड़ी असाध्य नहीं होती। (श्रमोत्पादक कारणों से तथा अतिव्यवाय, अति व्यायाम, अजीर्ण एवं वात-आदि रोगों में भी कभी-कभी नाड़ी रुक जाती है, इसे भी मृत्यु का कारण नहीं समझना चाहिए)॥ ५० ॥

पतितः संधितो भेदी नष्टशुक्रश्च यो भवेत् ।
शाम्यते विस्मयस्तस्य न किञ्चिन्मृत्युकारणम् ॥ ५१ ॥

ऊँचे स्थान पर से गिरने पर, हड्डी टूटने के बाद बाँधने पर अतिसार तथा वीर्यक्षय होने पर नाड़ी शान्त चलती है या जड़ हो जाती है। उसे मृत्यु का कारण न समझे। इस अवस्था की निस्पन्दनयुक्तनाड़ी असाध्य नहीं होती।

निस्पन्दनायामपि मृत्योरपवादः—

तथा भूताभिषङ्गे च त्रिदोषवदुपस्थिता ।
यद्यकस्मात्तथा नाडी न तदा मृत्युकारणम् ॥ ५२ ॥

त्रिदोषवत् नाड़ी-स्पन्दन में भी मृत्यु का अपवाद—जब भूत, प्रेत या देवग्रह आदि के लगने पर यदि नाड़ी अकस्मात् त्रिदोष की नाड़ी की तरह चले, अर्थात् सन्निपात में असाध्यता तथा मृत्यु बताने वाली नाड़ी की तरह नाड़ी चले तो वह मृत्यु का कारण नहीं होती है ॥ ५२ ॥

समाङ्गा वहते नाडी तथा च न क्रमं गता ।
अपमृत्युर्न रोगाङ्गा नाडी तत्सन्निपातवत् ॥ ५३ ॥

भूतादिकों के आक्रमण होने पर भी सन्निपात की नाड़ी चलती है किन्तु विषम भाव से क्रम छोड़ कर नहीं चलती (सम भाव से उचित स्थान में वातादि क्रम से स्पन्दन करती है) अतः यह नाड़ी अपमृत्यु तथा शरीर के रोगी होने की सूचना नहीं देती । अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार से नाड़ी चलने पर मृत्यु तथा रोग उत्पन्न होने की आशंका नहीं रहती है ॥ ५३ ॥

स्वस्थानहीने शोके च हिमाऽऽक्रान्ते च निर्गदाः ।
भवन्ति निश्चला नाड्यो न किञ्चित्तत्र दूषणम् ॥ ५४ ॥

अपने स्थान से गिर जाने पर (एकाएक किसी ऊंचे स्थान या हाथी-घोड़े से गिर जाने पर), शोक में (धन-पुत्रादि के वियोग में शोक होने पर) तथा अत्यधिक ठंडक से आक्रान्त होने पर आरोग्यावस्था में भी नाड़ी निश्चल (स्पन्दन-रहित) हो जाती है । ऐसी अवस्था में भी मृत्यु का भय नहीं रहता है ॥ ५४ ॥

स्तोकं वातकफं दुष्टं पित्तं वहति दारुणम् ।
पित्तस्थानं विजानीयाद् भेषजं तस्य कारयेत् ॥ ५५ ॥

यदि वात-कफ कम दूषित हो और पित्त अधिक दुष्ट हो गया हो तो वात-पित्त की नाड़ी प्रबल वेग से चलती है और वात-कफ की नाड़ी अप्रधान होने से पित्त की नाड़ी पहले प्रकट हो जाती है । इस प्रकार की नाड़ी सन्निपात के लक्षणों से युक्त होने पर भी असाध्य नहीं कहना चाहिए, अर्थात् इस प्रकार की नाड़ी मारक नहीं हैं । अतः यहाँ पर दोषों को साम्य करने के लिये चिकित्सा करे ॥ ५५ ॥

स्वस्थानच्यवनं यावद् धमन्या नोपजायते ।
तदा तच्चिह्नसत्त्वेऽपि नासाध्यत्वमिति स्थितः ॥ ५६ ॥

जब तक धमनी अपने स्थान (अँगूठे के मूल) से न हट जाय अर्थात् अँगूठ मूल के नीचे धमनी का स्पन्दन चलता रहे तब तक अन्य असाध्य के लक्षण उत्पन्न होने पर भी असाध्य नहीं समझना चाहिए । अर्थात् नाड़ी जीवन की साक्षी है जब नाड़ी में असाध्य लक्षण न मिले तब अन्य असाध्य लक्षणों को देखकर असाध्य नहीं समझना चाहिए ॥ ५६ ॥

मृत्युभयापवादः

न विमुञ्चति स्वस्थानं नाडी सूक्ष्मा विभाव्यते।
तस्य मृत्युभयं नास्ति व्याधिरप्युपशाम्यति॥ ५७॥

मृत्यु के भय का निराकरण—रोगी की नाड़ी पतली हो गई हो किन्तु अपने स्थान से न हटी हो तो उस रोगी की मृत्यु का भय नहीं रहता है और उसकी व्याधि शान्त हो जाती है॥ ५७॥

स्वस्थनाडीलक्षणम्—

सुव्यक्तता निर्मलत्वं स्वस्थानस्थितिरेव च।
अचाञ्चल्यममन्दत्वं सर्वासां शुभलक्षणम्॥ ५८॥

स्वस्थ नाड़ी का लक्षण—रोग मुक्त होने पर या आरोग्यावस्था में जब नाड़ी साफ २ क्रम से मालूम पड़े, दोषों के प्रकोप न होने से निर्मल हो तथा वात, पित्त, कफ की नाड़ी अपने स्थान पर अपनी गति के अनुसार स्पन्दन करती हो, न चञ्चल हो और न मन्द हो ये सब नाड़ियों के शुभ लक्षण हैं। अर्थात् इस प्रकार की नाड़ी चले तो व्यक्ति को स्वस्थ समझना चाहिए॥ ५८॥

दुष्टनाडीलक्षणम्—

रक्तं वमति सूक्ष्मत्वं स्वस्थानस्य विमोक्षणम्।
चाञ्चल्यं दोषपूर्णत्वं काठिन्यमतिमन्दता।
स्तैमित्यं गतिकौटिल्यं सर्वासां दुष्टलक्षणम्॥ ५९॥

दुष्टनाड़ी का लक्षण—नाड़ियों का रक्त पूर्ण होकर चलना, तन्तु के समान स्पन्दन का मालूम पड़ना, अपने स्थान (वात-पित्त कफादि का अंगूठा के नीचे प्रकोष्ठ पर तर्जनी, माध्यमा एवं अनामिका के नीचे वैषम्यस्पन्दन का प्रतीत होना) को छोड़कर चलना, अधिक तेजी से चलना, प्रकुपित वातादि के लक्षणों से परिपूर्ण रहना, अत्यधिक कठिन मालूम पड़ना, अधिक मन्द चाल से चलना, चिपचिपा प्रतीत होना, कुटिलता के साथ तिरछे चलना ये सब दोषों (वातादि) के द्वारा दूषित सभी नाड़ियों के दुष्ट लक्षण हैं॥ ५९॥

सुखसाध्यानाडी—

यदायं धातुमाप्नोति तदा नाडी तथागतिः।
तदा हि सुखसाध्यत्वं नाडी ज्ञानेन बुध्यते॥ ६०॥

सुखसाध्य नाड़ी का लक्षण—अपने स्वभाव से ही नाड़ी जिस समय जिस धातु को प्राप्त हो (जैसे प्रातः मध्याह्न, सायं या भोजन के आदि मध्य पच्यमान काल, पाक काल के बाद, स्वभाव से ही वात, पित, कफ का प्राबल्य होता है) उसी समय उस धातु की (वात के समय वात की गति, पित्त के समय पित्त की गति तथा कफ के समय कफ की गति) हो तो रोगी का रोग सुख साध्य है ऐसा नाड़ी ज्ञान के विशेषज्ञ समझते हैं। अर्थात् बिना कष्ट के ही आरोग्य प्राप्त करता है ॥ ६० ॥

नाडी यथाकालगतिस्त्रयाणां प्रकोपशान्त्यादिभिरेव भूयः ॥ ६१ ॥

जिस क्रम से वात, पित्त, कफ का सञ्चय, प्रकोप तथा शान्ति होती है उसी क्रम में नाड़ी की गति हो (शीत, ग्रीष्म, वर्षा, पूर्वाह्न, मध्याह्न, सायं रात्रि का पूर्व भाग, मध्यरात्रि, रात्रि का अपराह्न भाग एवं भोजन के समय पाक होने के समय, जीर्ण होने के बाद वात-पित्त-कफ का क्रम से प्रकोप होता है), अपने दोष के प्रकुपित होने के काल में ठीक-ठीक उसी की गति को लेकर नाड़ी चले तो रोगी के रोग को सुख साध्य समझें ॥ ६१ ॥

द्रव्यविशेषभक्षणे नाडीगतिः--

पुष्टिस्तैलगुडाहारे मांसे च लगुडाकृतिः ।
क्षीरे च स्तिमिता वेगा मधुरे भेकवद् गतिः ॥ ६२ ॥

विशेष द्रव्य के खाने पर नाड़ी की गति--तैल आदि स्निग्ध तथा गुड़ आदि सरस पदार्थों के खाने से नाड़ी पुष्ट (मोटी) होकर चलती है। मांस आदि खाने से नाड़ी डण्डे के सदृश कड़ी एवं मोटी होकर चलती है, दूध आदि पीने से नाड़ी मुलायम चलती है तथा मधुर पदार्थ के खाने से नाड़ी मेढक की तरह चलती है। (मधुर पदार्थ अधिक खाने से उसका पाक अम्ल होता है और अम्लता पित्त प्रकोपक है तथा प्रकुपित पित्त की गति मेढ़कवत् होती है)। पूर्वोक्त पदार्थों को अधिक खाने पर ही इस प्रकार की गति होती है। अन्यथा उचित मात्रा में खाने पर नाड़ी की गति स्वाभाविक होती है ॥ ६२ ॥

रम्भागुडवटाहारे रूक्षशुष्कादिभोजने ।
वातपित्तार्त्तिरूपेण नाडी वहति निष्क्रमम् ॥ ६३ ॥

केला, गुड़ के बने पदार्थ तथा बड़ा (उड़द आदि के) आदि के खाने से तथा रूखा-सूखा (भूने चना, चिउड़ा आदि) खाने से नाड़ी वात-पित्तप्रकोप की नाड़ी के सदृश चलती है। अर्थात् उसी प्रकार की गति वाली हो जाती है किन्तु उसका कोई क्रम नहीं होता है। कभी पहले वात की नाड़ी चलती है तो कभी पहले पित्त की गति चलती है, ऐसा क्रमविपर्यय से गति होती है ॥ ६३ ॥

रसविशेषभोजने नाडीगतिः—

मधुरे बर्हिगमना तिक्ते स्याद् भूलतागतिः
अम्ले कोष्णा प्लवगतिः कटुके भङ्गसन्निभा ॥ ६४ ॥

विशेष रस के भोजन करने पर नाड़ी की गति—मधुर पदार्थ के अधिक खाने से नाड़ी की गति मोर को तरह, तिक्त रसवाले पदार्थ को अधिक खाने से नाड़ी की गति केंचुए की तरह, अम्ल रसवाले पदार्थ का अधिक खाने से नाड़ी उष्ण तथा कूदती हुई और कटु रस वाले पदार्थ खाने से नाड़ी की गति कुलिंग पक्षी की गति (टेढ़ी मेढ़ी) की तरह होती है। (मधुर रस से कफ वृद्धि होने से मोर की तरह मन्द गति वाली, तिक्तरस से वात की वृद्धि होने से केंचुए की तरह गति वाली, अम्ल रस से पित्त की वृद्धि होने के कारण कूदती हुई की तरह तथा कटु रस से वात की वृद्धि होने से कुलिङ्ग की गति की तरह नाड़ी की गति होती है) ॥६४॥

कषाये कठिना म्लाना लवणे सरला द्रुता।
एवं द्वित्रिचतुर्योगे नानाधर्मवती धरा ॥ ६५ ॥

कषाय रस के अधिक सेवन करने से नाड़ी की गति—कठिन तथा लवण रस अधिक सेवन करने से नाड़ी की गति सीधी तथा जल्दी-जल्दी चलती है इसी प्रकार दो तीन आदि रसों का मिश्रण सेवन करने पर नाड़ी भी अनेक तरह की गतिवाली होती है ॥ ६५ ॥

रसानां शमनकोपत्वम्--

स्वाद्वम्ललवणा वायुं कषायस्वादुतिक्तकाः।
जयन्ति पित्तं श्लेष्माणं कषायकटुतिक्तकाः ॥ ६६ ॥

रसों का दोषशामक तथा दोष प्रकोपक लक्षण—मधुर, अम्ल तथा लवण रस वायु को, कषाय, मधुर तथा तिक्त रस पित्त को और कषाय, कटु तथा तिक्त रस कफ को शान्त करते हैं ॥ ६६ ॥

कट्वम्ललवणाः पित्तं स्वाद्वम्लवणाः कफम् ।
कटुतिक्तकषायाश्च कोपयन्ति समीरणम् ॥ ६७ ॥

कटु, अम्ल तथा लवण रस पित्त को, मधुर अम्ल तथा लवण रस कफ को और कटु, तिक्त तथा कषाय रस वायु को प्रकुपित करते हैं ॥ ६७ ॥

प्रसङ्गवशात् रसानां बिपाकमाह--

कटुतिक्तकषायाणां विपाकः प्रायशः कटुः ।
अम्लोऽम्लं पच्यते स्वादुर्मधुरो लक्षणस्तथा ॥ ६८ ॥

प्रसङ्गवश रसों के विपाक का निरूपण-कटु, तिक्त तथा कषाय रस का बिपाक प्रायः कटु, अम्ल रस का विपाक अम्ल (खट्टा), मधुर तथा लवण रस का विपाक मधुर होता है । (प्रायः कहने से कभी-कभी इसके विपरीत भी होता है ॥ ६८ ॥

मधुरो लवणोऽम्लश्च स्निग्धभावास्त्रयो रसाः ।
वातमूत्रपुरीषाणां प्रायो मोक्षे सुखा मताः ॥ ६९ ॥

मधुर, लवण तथा अम्ल ये तीनों रस चिकने होते हैं । जिसके कारण वायु, मूत्र तथा मल को निकलने में सरलता होती है । (चिकना पदार्थ वातानुलोमक होता है जिससे कोठे की चिकनाहट हो जाती है । अतः वायु, मूत्र तथा मल मलाशय में न रह कर सुखपूर्वक बाहर निकल जाते हैं) ॥ ६९ ॥

कटुतिक्तकषायाश्च रूक्षभावास्त्रयो रसाः ।
दुःखानि मोक्षे दृश्यन्ते वातविण्मूत्ररेतसाम् ॥ ७० ॥

कटु, तिक्त तथा कषाय ये तीनों रस रूखे होते हैं जिससे वायु का प्रकोप होता है । अतः वायु, मल मूत्र तथा वीर्य कठिनाई से बाहर निकलते हैं । अर्थात् इन्हें बाहर निकलने में रोकते हैं ॥ ७७ ॥

प्रसङ्गवशाद् द्रव्याणामपि रसधर्मत्वमाह—

मधुरं श्लेष्मलं प्रायो जीर्णात् शालियवादृते ।
मुदगाद् गोधूमतः क्षौद्रात् सितायां जाङ्गलामिषात् ॥७१॥

प्रसङ्गवश द्रव्यों के रस के अनुसार दोषों का निरूपण—पुराने जड़हन धान के चावल तथा पुराने जव को छोड़कर अन्य मधुर रस वाले द्रव्य प्रायः कफ-कारक होते हैं तथा पुराने मूँग, पुराना गेहूँ, शहद, शक्कर तथा जङ्गली जीवों

के मांस के रस को छोड़ कर अन्य मधुर रस वाले पदार्थ कफ कारक होते हैं। अर्थात् ये सब पुराने मूंग आदि मधुर रस होने पर भी कफ कारक नहीं होते ॥ ७१ ॥

प्रायोऽम्लं पित्तजननं दाडिमामलकादृते ॥ ७२ ॥

अनार तथा आँवले को छोड़कर प्रायः सभी अम्लरस वाले पदार्थ पित्त कारक होते हैं। (अनार तथा आँवला शीतगुण प्रधान होने से पित्तकारक नहीं होते। प्रायः शब्द कहने से कभी-कभी पित्तकारक होते भी हैं) ॥ ७२ ॥

द्रवेऽतिकठिना नाडी कोमला कठिनाशने।
द्रवद्रव्यस्य काठिन्ये कोमला कठिनाऽपि च ॥ ७३ ॥

नाड़ी द्रवपदार्थों के भोजन करने पर कठिन होती है (डण्डे की तरह मोटी एवं कड़ी होकर चलती है) और कड़े पदार्थों को खाने पर नाड़ी कोमल (स्पर्श में मुलायम) होती है। जब द्रव पदार्थ जम कर कठिन हो जाय तो उसको भोजन करने पर नाड़ी कभी कोमल होती है और कभी कठिन होकर चलती है (जैसे स्निग्ध कड़ा पदार्थ पहले स्पर्श के साथ मुलायम तथा बाद में कड़ा प्रतीत होता है) ॥ ७३ ॥

अम्लैश्च मधुराम्लैश्च नाडी शीता विशेषतः।
चिपिटैर्भृष्टद्रव्यैश्च स्थिरा मन्दतरा भवेत् ॥ ७४ ॥

अम्ल (खट्टे) तथा मधुराम्ल (खट्मीठे) पदार्थों को खाने से विशेषकर नाड़ी शीतल होती है। चिउड़ा तथा भुने हुए पदार्थ चना आदि खाने से नाड़ी की गति स्थिर तथा बहुत मन्द होती है। (यहाँ अम्ल पदार्थ से अनार तथा आँवला का ही ग्रहण करना चाहिए क्योंकि ये सब शीतल होते हैं। अन्य अम्ल-पदार्थ उष्ण-वीर्य होने से पित्तप्रकोपक होते हैं) ॥ ७४ ॥

कुष्माण्डैर्मूलकैश्चैव मन्दा मन्दा च नाडिका।
शाकैश्च कदलैश्चैव रक्तपूर्णेव नाडिका ॥ ७५ ॥

कुष्माण्ड तथा मूली भक्षण करने से नाड़ी की गति मन्द-मन्द हो जाती है। शाक (पत्र, फूल, फल, नाल, कन्द तथा संस्वेदज इन ६ प्रकार में से

किसी के) भक्षण करने से तथा केला खाने से नाड़ी की गति रक्तपूर्ण की तरह चलती है। (मालूम पड़ता है कि नाड़ियों में रक्त भरा है) ॥ ७५ ॥

मांसात् स्थिरवहा नाडी दुग्धे शीता बलीयसी।
गुडैः क्षीरैश्च पिष्टैश्च स्थिरा मन्दवहा भवेत् ॥ ७६ ॥

मांस भक्षण करने से नाड़ी स्थिरता लेकर चलती है अर्थात् मन्द मन्द चलती है। दूध पीने के बाद स्पर्श में शीत तथा बलवती हो कर चलती है। गुड़, दूध तथा पिठी खाने से स्थिर तथा मन्द-मन्द चलती है। (पहले बताया जा चुका है कि मांस खाने से नाड़ी डण्डा की तरह गति वाली होती है पुनः स्थिर वहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि डण्डाकृति होने पर भी स्थिर अर्थात् अचञ्चल होती है। धारोष्ण दूध पीने से सद्यः बलकारक होने के कारण नाड़ी स्थिर तथा बलवती होती है। शीतल दूध पीने से नाड़ी शीतल तथा कफ कारक होने से स्तिमित गति वाली होती है। आधा गरम दूध पीने से भारी होने के कारण नाड़ी स्थिर तथा मन्द होती है) ॥ ७६ ॥

गुडरम्भामांसरूक्षशुष्कतीक्ष्णादिभोजनात्।
वातपित्तार्त्तिरूपेण नाडी वहति निश्चला ॥ ७७ ॥

गुड़, केले का फल, मांस तथा रूखा पदार्थ (चिउड़ा आदि) तथा सूखा पदार्थ (भूने चना आदि), तीक्ष्ण पदार्थ (सरसो, अदरक आदि) द्रव्यों को अकेले या दो तीन द्रव्यों को मिलाकर खाने से नाड़ी वात पित के प्रकोप की तरह गति से चलती है अर्थात् कभी टेढ़ी, कभी तिरछी एवं उछलती हुई चलती है और यह निश्चल होती है या क्रम हीन होती है ॥ ७७ ॥

अम्लेऽपि हृद्यसुस्थत्वे भवन्ति तापिताः शिराः ॥ ७८ ॥

अम्ल पदार्थों के भोजन करने से यदि हृदय में दाह आदि पैदा हो जाय तो नाड़ियाँ गरम होती हैं। अर्थात् अनार तथा आँवला को छोड़कर शेष अम्ल पदार्थ के खाने से पित्त प्रकोप द्वारा नाड़ी गरम होती है यदि हृदय में जलन न हो तो कम तथा जलन हो तो अधिक गरमी नाड़ियों में प्रतीत होती है या अम्ल पदार्थ के रस से हृद्य तथा सुस्थ एवं अविकारी मात्रा में भोजन करने पर भी नाड़ी गरम चलती है ॥ ७७ ॥

प्रातरादौ सुस्थनाडीगतिमाह—

प्रातः स्निग्धमयी नाडी मध्याह्नेऽप्युष्णतान्विता।
सायाह्ने धावमाना च रात्रौ वेगविवर्जिता।
प्रकृतिस्था च सा नाडी सदा ज्ञेया भिषग्वरैः॥ ७९॥

प्रातः-आदि काल में सुस्थ नाड़ी की गति का निर्देश—प्रातः काल नाड़ी स्निग्ध (स्पर्श में चिकनी तथा स्थिर मन्द गति वाली) होती है क्योंकि प्रातःकाल स्वभावतः कफ की प्रधानता होने पर स्निग्ध गुणक कफ की वृद्धि होने से नाड़ी स्निग्ध, स्थिर एवं मन्द मन्द चलती है। मध्याह्न (दोपहर को) में उष्णता युक्त नाड़ी चलती है। इस समय स्वाभाविक पित्त की प्रधानता से नाड़ी उष्ण होती है और सायंकाल स्वाभाविक वात वृद्धि का समय होने के कारण वात की नाड़ी दौड़ती हुई चलती है। रात्रि में स्वभाव से ही दिन की अपेक्षा उष्णता कम होती है तथा इन्द्रियों के विश्रान्त होने से नाड़ी की गति उत्तेजना रहित होती है। दिन में समय भेद से स्निग्ध, उष्ण तथा दौड़ती हुई नाड़ी चलती है। रात्रि में प्रकृतिस्थ होती है। इस प्रकार की गति वाली नाड़ी स्वाभाविक होती है ऐसा विद्वान् चिकित्सक समझें॥ ७९॥

ज्वरपूर्वरूपे नाडीगतिः—

अङ्गग्रहेण नाडीनां जायन्ते मन्थराः प्लवाः।
प्लवः प्रबलतां याति ज्वरदाहाभिभूतये॥ ८०॥

ज्वर के पूर्व रूप में नाड़ी की गति—ज्वर के पहले अङ्गग्रह (शरीर में स्फुटन एवं अकड़न) होता है उस समय मन्द गति से कूद-कूद कर नाड़ी चलती है। यदि ज्वर के साथ दाह भी हो तो प्रबल वेग से कूद-कूद कर (तेजी से मेढक आदि की तरह कूद-कूद कर) चलती है। अर्थात् ज्वर आने के पूर्व इस प्रकार की नाड़ी की गति होती है॥ ८०॥

सान्निपातिकपूर्वरूपे नाडी—

सान्निपातिकरूपेण भवन्ति सर्ववेदनाः॥ ८१॥

सन्निपात के पूर्व रूप में नाड़ी की गति—सन्निपातज्वर के उत्पन्न होने के पूर्व सभी प्रकार के नाड़ियों की गति प्रकट होती है। अर्थात् जोंक तथा साँप की

तरह टेढ़ी मेढ़ी, मेढ़क या कौवे की तरह फुदकती हुई तथा कभी हंस तथा मोर की तरह स्थिर मन्द एवं लवातीतिर आदि की तरह तिरछी गति से चलती है॥

ज्वरकोपे तु धमनी सोष्मा वेगवती[1] भवेत् ॥ ८२ ॥

ज्वर के प्रकोप होने पर धमनी (नाड़ी) उष्म तथा तेजगति से चलती है। (ज्वर में पित्त का प्रकोप होता है और पित्त प्रकोप में नाड़ी उष्ण तथा तीव्र गति वाली होती है। कफ ज्वर तथा वात ज्वर में क्रमशः कफ नाड़ी की गति तथा वात नाड़ी की गति होती है) ॥ ८२ ॥

वातोल्वणज्वरे नाडी—

ज्वरे वक्रञ्च धावन्ति यथा च मारुतप्लवे ॥ ८३ ॥

वात ज्वर में नाड़ी की गति—वात प्रकोप से होने वाले ज्वर में सामान्यतः ज्वर की नाड़ी उष्णता एवं तेजी के साथ-साथ टेढ़ी तथा तिरछी गति से चलती है ॥ ८३ ॥

रमणान्ते नाडीगतिः—

रमणान्ते निशि प्रातस्तप्ता दीपशिखा यथा ॥ ८४ ॥

रमण काल के बाद नाड़ी की गति —स्त्रीप्रसङ्ग के बाद नाड़ी की गति (शेष रात तथा प्रातः तक) दीपक की ज्वाला की तरह गरम होती है (ज्वर में उष्ण एवं वेगवती नाड़ी होती है इसमें दीपशिखा की तरह स्थिर तथा गरम होती है यही ज्वर तथा स्त्रीप्रसङ्ग करने के बाद गति में भेद है) ॥ ८४ ॥

समवाते नाड़ीगतिः—

सौम्या सूक्ष्मा स्थिरा मन्दा नाडी सहजवातजा ।
स्थूला च कठिना शीघ्रा स्पन्दते तीव्रमारुते ॥ ८५ ॥

---

१. उष्णा वेगवती नाडी ज्वरकोपे प्रजायते ।
उद्वेग क्रोध कामेषु भय चिन्तोदये तथा ॥
भवेत्क्षीणगतिर्नाडी ज्ञातव्या वैद्यसत्तमैः ।
क्षीणधातोश्चमन्दाग्नेर्भवेन्मदतरा ध्रुवम् ॥ (ना० प० २५-२६)

अन्तर्गतज्वर लक्षणम्—

शरीरं शीतलं नाडी नूनं सोष्णतराभवेत्–
ज्वरमन्तर्गतं तस्य जानीयाद्भिषगुत्तमः ॥ (ना० प० ९५)

वात की साम्यावस्था में नाड़ी की गति—वात की स्वाभाविक अवस्था में नाड़ी की गति, मृदु, सूक्ष्म स्थिर तथा मन्द होती है और वात के प्रकोप में नाड़ी की गति स्थूल, कठिन एवं शीघ्रगामी स्पन्दन वाली होती है। वात प्रकोप के कुछ समय (सायंकाल, भोजन की जीर्णावस्था, ग्रीष्म ऋतु आदि) तथा अन्य वात प्रकोपक कारणों से वात प्रकुपित होने पर नाड़ी की गति मोटी, कड़ी तथा जल्दी-जल्दी चलने वाली होती है। स्वस्थावस्था में सूक्ष्म, स्थित एवं मन्द गति वाली होती है। वात के सञ्चयकाल में भी नाड़ी वात की नाड़ी की तरह चलती है ॥ ८५ ॥

मृता च सरला दीर्घा शीघ्रा पित्तज्वरे भवेत् ।
शीघ्रमाहननं नाड्याः काठिन्याच्च चला तथा ।
मलाजीर्णेन नितरां स्पन्दनञ्च प्रकीर्त्तितम् ॥ ८६ ॥

पित्त ज्वर में नाड़ी दोषों से भरी हुई सीधी रेखा में लम्बी (अनामिका से तर्जनी तक) तथा जल्दी-जल्दी स्पन्दन करती है। नाड़ी के कठिन होने से जल्दी जल्दी धक्का देती हुई चञ्चलता पूर्वक चलती है। अर्थात् मालूम पड़ता है कि चमड़े को फोड़कर नाड़ी बाहर निकल जाना चाहती है। मलाजीर्ण होने पर नाड़ी अत्यधिक स्पन्दन करने वाली होती है। तात्पर्य यह है कि मल (साम पित्त) जैसे-जैसे पक्व हो जाता है वैसे-वैसे नाड़ी काठिन्यादि दोष छोड़कर वार २ फुर्तीली एवं हल्कापन लिये हुए चलती है ॥ ८६ ॥

श्लेष्मा नाडी—

नाडी तन्तुसमा मन्दा शीतला श्लेष्मकोपतः ॥ ८७ ॥

कफ ज्वर में नाड़ी की गति—कफ ज्वर में नाड़ी (सञ्चयकाल या प्रकोपकाल में) कमल के सूत के समान पतली, मन्द तथा शीतल होती है। अर्थात् कफ से प्रकोप होने पर नाड़ी कमल तन्तु के समान होकर मन्द गति से, स्पर्श में शीतल चलती है ॥ ८७ ॥

वात्तपित्तजा नाडी—

चञ्चला तरला स्थूला कठिना वातपित्तजा ॥ ८८ ॥

वात, पित्त-ज्वर में नाड़ी की गति—वात पित्तजन्य ज्वर में नाड़ी चञ्चल, तरल (ढिली-ढाली), स्थूल (मोटी) तथा कठिन-सी होकर चलती है। (दोनों

के साथ-साथ प्रकोप होने से वात की वक्र गति तथा पित्त की सरल गति दोनों ही मध्यम गति के अनुसार चलती है। अर्थात् न तो अधिक टेढ़ मेढ़ ही रहती है। और न बिलकुल सरल ही रहती है बल्कि कुछ टेढ़ी और कुछ सरल होकर चञ्चल कठिनता तथा स्थूलता लिये हुए चलती है ॥ ८८ ॥

वातजश्लेष्मिकी नाडी—

ईषच्च दृश्यते तूष्णा मन्दा स्याच्छ्लेष्मवातजा।
निरन्तरं खरं रूक्षंमन्दश्लेष्माऽतिवातला ॥ ८९ ॥

वात श्लेष्म ज्वर में नाड़ी की गति—वात-श्लेष्म ज्वर में दोनों दोषों के समान रूप में प्रकुपित होने पर नाड़ी थोड़ी गरम होती हुई मन्द गति से (हंस तथा मोर की तरह गति वाली) चलती है। यदि ज्वर में कफ का प्रकोप कम तथा वात का प्रकोप अधिक हुआ हो तो नाड़ी निरन्तर खर (तेज) तथा रूक्ष होकर चलती है ॥ ८९ ॥

रूक्षवातजा नाडी—

रूक्षवातभवे तस्य नाडी स्यात् पिण्डसन्निभा ॥ ९० ॥

रूक्ष वात जन्य नाड़ी का लक्षण—रूक्ष पदार्थों के सेवन करने से प्रकुपित वात में नाड़ी पिण्ड के समान (गोली या गाँठ की तरह) कर्कश प्रतीत होती है ॥ ९० ॥

पित्तश्लेष्मजा नाडी—

सूक्ष्मा शीता स्थिरा नाडी पित्तश्लेष्मसमुद्भवा ॥ ९१ ॥

पित्तश्लेष्म प्रकोप जन्य नाड़ी का लक्षण--पित्त-कफ जन्य प्रकोप से उत्पन्न ज्वर में नाड़ी सूक्ष्म (पतली) शीतल (स्पर्श में) तथा स्थिर (चञ्चलता रहित) होती है। इसमें पैत्तिक नाड़ी के लक्षण का विशेष प्रभाव नहीं पडता क्योंकि पित्त कफाभिभूत होता है अर्थात् मिश्रण होने से दोनों की नाड़ी की गतियों में समानता आ जाती है। अतः तेजी से तथा अधिक कूदकर चलने का संकेत नहीं मिलता जब कि पित्त की नाड़ी तेज तथा कूदकर कौवा एवं मेढक की तरह होती है ॥९१॥

रक्तपूर्णमलवती नाडी—

मध्ये करे वहेन्नाडी यदि सन्तापिता ध्रुवम् ।
तदा नूनं मनुष्याणां रुधिरापूरिता मलाः ॥ ९२ ॥

ज्वर में रक्त एवं मल से पूर्ण नाड़ी का लक्षण—ज्वरावस्था में यदि नाड़ी मध्यमा अंगुली के नीचे गरम होकर चले तो समझना चाहिए की वातादि दोष रक्त के साथ में मिलकर पूर्ण है। (यहाँ नाड़ी दोष पूर्ण होने के कारण रक्त का भी पित्त के सदृश कार्य होने से तेज गति वाली होती है) ॥ ९२ ॥

कामादि-नाडीगतिः—

कामात् क्रोधाद् वेगवती क्षीणा चिन्ताभयाप्लुता ॥ ९३ ॥

काम-क्रोध-चिन्ता तथा भय से उत्पन्न नाड़ी का लक्षण—काम तथा क्रोध उत्पन्न होने पर नाड़ी की गति वेग वाली (जल्दी-जल्दी गति) होती है तथा चिन्ता तथा भय के कारण नाड़ी की गति क्षीण (दुर्बल) होती है ॥ ९३ ॥

भूतज्वरे नाडीगतिः--

भूतज्वरे सेक इवातिवेगा धावन्ति नाड्यो हि यथाब्धिगामाः ॥९४।

भूत ज्वर में नाड़ी की गति—भूताभिसन्न ज्वर या भूत ग्रह ज्वर में नाड़ी भरी हुई तथा प्रवल वेग से चलती है जैसे समुद्र की ओर जाने वाली नदियाँ पानी से भरी हुई किनारों को डुबोती हुई प्रबल वेग से समुद्र की ओर जाती है। उसमें स्पर्श से उष्णता भी प्रतीत होती है ॥ ९४ ॥

विषमज्वरे नाडीगतिः--

ऐकाहिकेन क्वचन प्रदूरे क्षणान्तगा वा विषमज्वरेण ।
द्वितीयके वाथ तृतीयतुर्ये गच्छन्ति तप्ता भ्रमिवत् क्रमेण ॥९५॥

विषमज्वर में नाड़ी की गति--एकाहिक विषम ज्वर में नाड़ी कभी-कभी अपने स्थान (अंगुष्ठ मूल से) से दूर हटकर फड़कती है किन्तु पुनः क्षण भर में ही अपने स्थान पर पहुँच जाती है। द्वितीयक या तृतीयक विषम ज्वर में तथा चतुर्थिक विषम ज्वर में नाड़ी स्पर्श में गरम तथा अपने स्थान से कुछ दूर जाकर लौटती हुई की तरह प्रतीत होती है ॥ ९५ ॥

क्रोधजे सङ्गलग्नाङ्गा ससङ्गा कामजे ज्वरे ।
उष्णा वेगधरा नाडी ज्वरकोपे प्रजायते ॥ ९६ ॥

क्रोध जन्य साधारण ज्वर में नाड़ी अन्य नाड़ियों के साथ लिपट कर चलती हुई की तरह प्रतीत होती है। काम जन्य साधारण ज्वर में अन्य धमनियों के साथ-साथ अटकती हुई सी चलती है। इन ज्वरों के अतितीव्र हो जाने पर नाड़ी उष्ण तथा जल्दी-जल्दी चलने वाली होती है। (सङ्ग चलने का तात्पर्य यह है कि जैसे आपस में मिली हुई दो लताओं को स्पर्श करने पर जैसा अनुभव होता है वैसे ही इस अवस्था में (ज्वारावस्था में) नाड़ीस्पर्श करने से अनुभव होता है) ॥ ९६ ॥

उद्वेगक्रोधकालेषु भयचिन्ताभ्रमेषु च।
भवेत् क्षीणगतिर्नाडी ज्ञातव्या वैद्यसत्तमैः ॥ ९७ ॥

व्याकुलता एवं क्रोध के समय और भय, चिन्ता तथा भ्रम (चक्कर) के होने पर नाड़ी क्षीण गति (दुर्बल गति) से चलती है। ऐसा उत्तम वैद्य समझें ॥ ९७ ॥

ज्वरे रमणादौ च नाडीगतिः—

ज्वरे च रमणे नाड़ी क्षीणाङ्गी मन्दगामिनी।
ज्वरे कालार्त्तिरूपेण भवन्ति विकलाः शिराः ॥ ९८ ॥

ज्वर के समय तथा स्त्रीप्रसङ्ग करने पर नाड़ी की गति—ज्वर की अवस्था में तथा स्त्रीप्रसङ्ग करने पर नाड़ी पतली (सूक्ष्म स्पर्श वाली) तथा मन्द-मन्द चाल से चलती है। ज्वर के समय में स्त्री-प्रसङ्ग की इच्छा होने पर भी नाड़ी व्याकुल होकर इधर-उधर भटकती हुई की तरह प्रतीत होती है। अर्थात् उस समय एक स्थिरगति पर नहीं रहती है ॥ ९८ ॥

ज्वरे दध्यादिभोजनजा नाडी—

उष्णत्वं विषमा वेगा ज्वरिणां दधिभोजनात् ॥ ९९ ॥

ज्वर की अवस्था में दही आदि खाने से उत्पन्न विकार में नाड़ी का लक्षण—ज्वर की अवस्था में दही खाने पर नाड़ी अधिक उष्ण होकर चलती है तथा उसके वेग विषम होते हैं। अर्थात् कभी तेज चलती है और कभी मन्द-मन्द चलती है और ज्वर की उष्णता की अपेक्षा अधिक उष्ण नाड़ी चलती है ॥ ९९ ॥

काञ्जिकया ज्वराक्रान्ते जायते मन्थरा गतिः।
अम्लाशित्वादसुस्थत्वं जायन्ते तापिता शिराः ॥ १०० ॥

ज्वर की अवस्था में भी यदि मनुष्य कांजी का सेवन करे तो नाड़ी की गति मन्द हो जाती है, और अम्ल पदार्थ अधिक खाने से अस्वस्थ शरीर वाले व्यक्ति की नाड़ी गरम प्रतीत होती है। अर्थात् अम्ल पदार्थ खाने से पित्त अधिक बढ़ जाता है जिससे नाड़ी की गति गरम -गरम प्रतीत होती है॥ १०० ॥

ज्वरमुक्तौ व्यायामादौ नाडीगतिः—

व्यायामे भ्रमणे चैव चिन्तायां धनशोकतः।
नानाप्रकारं गमनं शिरा गच्छति विज्वरे॥ १०१॥

ज्वर छूटने के बाद व्यायाम आदि करने पर नाड़ी की गति—ज्वर के निवृत्त होने के बाद तुरन्त ही (दौर्बल्यावस्था में) व्यायाम तथा परिभ्रमण करने से और धननाश होने के कारण चिन्ता की अवस्था में नाड़ी की गति अनेक प्रकार से होती है। अर्थात् कभी तेज, कभी मन्द, कभी सीधी तथा कभी टेढ़ी-मेढ़ी आदि नाड़ी की गति होती है॥ १०१ ॥

इति ज्वरे नाडी ज्ञानम् समाप्तम्।

अजीर्णे नाडी ज्ञानम्—

अजीर्णे तु भवेन्नाडी कठिना परितो जडा।
प्रसन्ना तु द्रुता शुद्धा त्वरिता व प्रवर्त्तते॥ १०२॥

अजीर्णावस्था से नाड़ी का लक्षण—अजीर्णावस्था में नाड़ी कड़ी होकर दोनों ओर की शिरावों से संयुक्त हुई की तरह मन्द-मन्द चाल से चलती है। भोजन की जीर्णावस्था में (अच्छी तरह परिपाक हो जाने पर) नाड़ी प्रसन्न, आलस्य-रहित, कोमल, दोषों से रहित (निर्मल) तथा शीघ्रगति से चलती है। यहाँ गति शीघ्र होने पर भी चाञ्चल्य रहित होती है॥ १०२ ॥

पक्वाजीर्णे पुष्टिहीना मन्दं मन्दं वहेत्सिरा।
असृक्पूर्णा भवेत् कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी॥ १०३॥

अजीर्ण की पाकावस्था में नाड़ी पुष्टि से रहित (गुरुता रहित दुर्बल सी या हल्की) पतली तथा मन्द-मन्द चाल से चलती है। अजीर्ण नाड़ी रक्त से पूर्ण हो तो कुछ उष्णता ली हुई भारी होती है अर्थात् उष्णता युक्त भारी नाड़ी की गति होती है॥ १०३ ॥

सुखितमन्दाग्न्यादौ नाडी—

सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया चपला क्षुधितस्य च।
मन्देऽग्नौ क्षीणधातौ च नाडी मन्दतरा भवेत्।
मन्देऽग्नौ क्षीणतां याति नाडी हंसाकृतिस्तथा ॥ १०४ ॥

सुख (भोजनादि से तृप्त) तथा मन्दाग्नि में नाड़ी की गति—जो व्यक्ति सुखित (भोजनादि से तृप्त) है उसकी नाड़ी स्थिर होती है और जो व्यक्ति भूखा होता है उसकी नाड़ी की गति चञ्चल (तेज) होती है। जाठराग्नि के मन्द होने पर तथा धातुओं के क्षय होने पर नाड़ी की गति अत्यन्त मन्द होती है। मन्दाग्नि में नाड़ी क्षीण होकर हंस की गति की तरह पतली गति वाली (मन्द-मन्द गति) होती है ॥ १०४ ॥

आमाशयदुष्टयादौ नाडी—

आमाशये पुष्टिविवर्द्धनेन भवन्ति नाड्यो भुजगाग्रवृत्ताः।
आहारमान्द्यादुपवासतो वाऽतथैव नाड्यो भुजगातिवृत्ताः ॥ १०५ ॥

आमाशय के दूषित होने पर नाड़ी की गति—आमाशय में पुष्टिकारक पदार्थों को अधिक खा लेने से नाड़ी की गति सर्प के अग्रभाग (शिरो भाग) की तरह होती है। अर्थात् नाड़ी मोटी न होकर चिपटी, गोल तथा थोड़ी टेढ़ी चलती है। आहार के कम खाने से तथा उपवास करने से नाड़ी साँप की तरह अति-टेढ़ी होकर मन्द-मन्द गति से चलती है। नाड़ी उपवास से वात प्रकोप के कारण वात नाड़ी की तरह टेढ़ी-मेढ़ी गति से चलती है ॥ १०५ ॥

दीप्ताग्नौ नाडीगतिः—

लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती स्मृता ॥ १०६ ॥

जाठराग्नि की प्रदीप्तावस्था में नाड़ी की गति—जाठराग्नि के प्रदीप्त होने पर नाड़ी की गति हल्की (न क्षीण और न पुष्ट) तथा वेग के साथ जल्दी-जल्दी चलती है ॥ १०६ ॥

ग्रहण्यां नाडीगतिः—

पादे च हंसगमना करे मण्डूकसंप्लवा।
तस्याग्नेर्मन्दता देहे त्वथवा ग्रहणीगदः ॥ १०७ ॥

ग्रहणी में नाड़ी की गति—जिसकी नाड़ी पैर में हंस के समान मन्द-मन्द गति से चले तथा हाथ में मण्डूक के समान कूद-कूदकर चले तो समझना चाहिए कि उस मनुष्य की जाठराग्नि मन्द हो गई है अथवा ग्रहणी रोग हो गया है ॥१०७॥

ग्रहण्यतिसारादौ नाडीगतिः—

भेदेन शान्ता ग्रहणीगदेन निर्वीर्यरूपा त्वतिसारभेदे ।
विलम्बिकायां प्लवगा कदाचिदामातिसारे पृथुला जडा च ॥ १०८॥

ग्रहणी तथा अतिसार[1] रोग में नाड़ी की गति—यदि ग्रहणी रोग में अधिक दस्त आते हों तो नाड़ी शान्त (अधिक क्षीण होकर) मन्द-मन्द गति से चलती है और अतिसार रोग में अधिक दस्त आने पर बल हीन की तरह ढीली ढाली होकर सूक्ष्म-सूक्ष्म तथा मन्द-मन्द चलती है। बिलम्बिका रोग में नाड़ी कभी-कभी कूद-कूदकर मेढक या कौवे की गति की तरह चलती है। अर्थात् शान्त रहते हुए कभी-कभी प्लव गति से चलती है। आमातिसार में नाड़ी मोटी अन्य शिरावों से सटी हुई की तरह अचञ्चल गति से चलती है ॥ १०८ ॥

वेगरोधविसूच्योर्नाडी—

निरोधे मूत्रशकृतोर्विड्ग्रहे त्वितराश्रिताः ।
विसूचिकाभिभूते च भवन्ति भेकवत्क्रमाः ॥ १०९ ॥

वेग रोग तथा विसूचिका में नाड़ी की गति—मूत्र मल के वेग को रोकने से या स्वयं रुक जाने से नाड़ी की गति एक दोष को आश्रय करती है। अथवा

---

१. अतिसारे च मन्दा स्यात् ग्रीष्मकाले जलौकवत् ।
वातातिसारे वक्रत्वं चञ्चला पित्तसम्भवे ॥ १ ॥
राजहंसगतिर्यादृक् तादृग् नाड्यः कफावृत्ते ।
द्वन्द्वजातिसारे नाडीमुहुर्भेकगतिं तथा ॥ २ ॥
वातपित्तसमुद्भूतां प्रवदन्ति मनीषिणः ।
भुजगादिगतिं स्थूलां राजहंसगतिं तथा ॥ ३ ॥
वातश्लेष्मसमुद्भूतां प्रवदन्ति महाधियः ।
मण्डूकादिगतिं नाडी मयूरादिगतिं तथा ॥ ४ ॥
पित्तश्लेष्मसमुद्भूतां प्रवदन्ति विशारदः ।
सन्निपाते विलुप्ता तु नाडी भवति निश्चितम् ॥ ५ ॥

दोनों रोकने पर या स्वयं रुक जाने पर जो दोष प्रबल होता है उसी के अनुसार नाड़ी की गति होती है। विसूचिका रोग होने पर मेढक की गति के समान नाड़ी कूद-कूदकर चलती है ॥ १०९ ॥

आनाहमूत्रकृच्छ्रयोर्नाडी—

आनाहे मूत्रकृच्छ्रे च भवेन्नाडीगरिष्ठता ॥ ११० ॥

आनाह तथा मूत्र कृच्छ्र में नाड़ी की गति—आनाह (पेट में वायु भर जाना) तथा मूत्र रोग में नाड़ी भारी तथा कठिनता के साथ चलती है ॥ ११० ॥

शूलरोगे नाडी—

वातेन शूलेन मरुत्प्लवेन सदातिवक्रा हि सिरा वहन्ति।
ज्वालामयी पित्तविचेष्टितेन साध्मानशूलेन च पुष्टिरूपा ॥ १११ ॥

शूल रोग में नाड़ी की गति—वात शूल में अथवा वात की अधिक वृद्धि होने पर नाड़ी हमेशा अधिक टेढ़ी-मेढ़ी चलती है। पित्तजन्यशूल होने पर अधिक गरम होकर चलती है तथा आध्मान के साथ शूल होने पर पुष्ट होकर (स्थूल होकर) चलती है। (इसमें वात की प्रधानता होने से नाड़ी भी थोड़ी टेढ़ी होकर चलती है) ॥ १११ ॥

प्रमेहरोगे नाडी—

प्रमेहे ग्रन्थिरूपा सा प्रतप्ता त्वामदूषणे ॥ ११२ ॥

प्रमेह रोग में नाड़ी की गति—प्रमेह रोग में नाड़ी गाँठ के रूप (गठीली-सी) में प्रतीत होती है। आम से युक्त प्रमेह रोग में नाड़ी उष्णता के साथ चलती है। अर्थात् उष्णता युक्त गठीली-सी नाड़ी की गति होती है ॥ ११२ ॥

नाडीगत्या विषादिज्ञानम्—

उत्पित्सुरूपा विषविष्टिकाले विष्ठम्भगुल्मेन च वक्ररूपा।
अत्यर्थवातेन अधः स्फुरन्ती उत्तानभेदिन्यसमाप्तिकाले ॥ ११३ ॥

नाड़ी की गति के अनुसार विष का ज्ञान—सर्प आदि काटने से या विष आदि खा जाने से शरीर में जब विष फैल जाता है उस समय नाड़ी ऊपर की ओर कूदती हुई चलती है। (जैसे कूदने वाला संकुचित होकर कूदता है वैसे ही संकुचित होकर कूदती हुई-सी चलती है)। मल के रुकने तथा गुल्म रोग में नाड़ी टेढ़ी चलती है। विष्टम्भ (विबन्ध) तथा गुल्म के पूर्ण समाप्ति के पहले नाड़ी वात के अधिक होने के कारण नीचे की ओर सम्पन्न करती हुई उत्तान-

भेदिनी (ऊपर की ओर कूदती हुई) सी चलती है या अधो-गामिनी होती हुई बीच ही से उर्ध्वमागिनी होकर चलती है ॥ ११३ ॥

गुल्मादौ नाडी—

गुल्मेन कम्पोऽथ पराक्रमेण पारावतस्येव गतिं करोति ॥ ११४ ॥

गुल्म आदि रोग में नाड़ी की गति—गुल्म रोग में नाड़ी काँपती हुई-सी गमन करती है। साहस से काम करने पर नाड़ी कबूतर की गति की तरह चलती है। अर्थात् कबूतर की तरह घूमती हुई-सी नाड़ी चलती है ॥ ११४ ॥

व्रणादौ नाडी—

व्रणेऽतिकठिने देहे प्रयाति पैत्तिकं क्रमम् ।
भगन्दरानुरूपेण नाडीव्रणनिवेदने ।
प्रयाति वातिकं रूपं नाडी पावकरूपिणी ॥ ११५ ॥

व्रण-आदि में नाड़ी की गति—शरीर में व्रण के अत्यधिक कठिन (अपक्वा-वस्था में) होने पर पैत्तिक नाड़ी के क्रम से (कुलिङ्ग, काक तथा मण्डूक आदि की तरह) नाड़ी की गति होती है। अर्थात् नाड़ी तेज तथा कूद-कूदकर चलती है। नाड़ी व्रण (नासूर) में नाड़ी भगन्दर की गति की तरह चलती है। भगन्दर तथा नाड़ी व्रण में नाड़ी पावक रूपी (अधिक-उष्ण) वातिक नाड़ी (साँप, जोंक की तरह) की तरह टेढ़ी-मेढ़ी गति से चलती है ॥ ११५ ॥

वान्तशल्याभिहतादेर्नाडीगतिः ।

वान्तस्य शल्याभिहतस्य जन्तोर्वेगावरोधाकुलितस्य भूयः ।
गतिं विधत्ते धमनी गजेन्द्रमरालमालेव कफोल्वणेन ॥ ११६ ॥

इति नाडी विज्ञानम् सम्पूर्णम् ।

वमन शल्यादि विकार में नाड़ी की गति—कय करने पर तथा शल्य (तीर, पत्थर, डण्डे से क्षत होने पर) आदि से पीड़ित होने पर तथा वेग के रोकने से व्याकुल पुरुषों की नाड़ी प्रकुपित कफ की नाड़ी की तरह (हाथी, हंस, मोर आदि की तरह मन्द-मन्द) मन्द-मन्द चाल से चलती है ॥ ११६ ॥

इति श्री इन्द्रदेव त्रिपाठी विरचित "विद्योतिनी" हिन्दी व्याख्या सहित

नाड़ी विज्ञान समाप्त



परिशिष्ट-१

यूनानी मतानुसार नाड़ी-परीक्षा

यूनानीमतेन नाड्या नामान्तरम्—

नाडी नामान्तरं नब्जं यूनानीवैद्यके मताः ।
विधास्ये तत्क्रमं चात्र वैद्यानां कौतुकाय च ॥ १ ॥

यूनानी मत से नाड़ी का नाम—यूनानी वैद्य (हकीम) नाड़ी को नब्ज कहते हैं। उस नब्ज का क्रम वैद्यों के कौतूहल के लिए कह रहा हूँ ॥ १ ॥

रूहस्य द्वैविध्यवर्णनम्—

हयवानी च नफसानी रूहद्वयमुदाहृतम् ।
हृदयस्थं शिरस्स्थं च देहीदेहसुखावहम् ॥ २ ॥

दो प्रकार के रूह का वर्णन—यूनानी मतानुसार रूह दो प्रकार की होती है—हयवानी और नफसानी । हयवानी हृदय में रहती है और नफसानी मस्तिष्क में रहती है। ये दोनों देह धारियों के लिये सुखदायी हैं ॥ २ ॥

रूहसम्बन्धितनाड्या द्वैविध्यवर्णनम्—

तत्संगतास्तु या नाड्यः शिरियानासवः क्रमात् ।
हृत्पद्मे यास्तु संलग्ना समन्तात्प्रस्फुरन्ति च ॥ ३ ॥

दो प्रकार की रूह सम्बन्धित नाड़ी का वर्णन—उस रूह से सम्बन्धित जो नाड़ियाँ हैं वे दो प्रकार की हैं—(१) शिरियान तथा (२) असव । इनमें शिरियान हृत्कमल में लगी रहती है उससे सर्वत्र स्फुरण प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

शिरोऽन्तर्मार्गसंबद्धास्ताभिश्चेष्टादिकं भवेत् ।
श्रेष्ठो जीवनिवासो हृद्राज्ञो राज्यासनं यथा ॥ ४ ॥

दूसरी असव नामक नाड़ी है जो शिरोऽन्तर्मार्ग अर्थात् मस्तक के भीतर लगी रहती है। इन नाड़ियों से देह की चेष्टा आदि होती है। जैसे राजा राज्य

सिंहासन पर स्थित होकर शोभित होता है उसी प्रकार जीव का श्रेष्ठ निवास-स्थान हृदय है ॥ ४ ॥

मणिबन्धे धमन्याः परीक्षणम्—

तद्भवा धमनी मुख्या मनुष्यमणिबन्धगाः ।
परीक्षणीया भिषजा ह्यङ्गुलिभिश्चतसृभिः ॥ ५ ॥

कलाई पर धमनी नाड़ी की परीक्षा—उन हृद्गत नाड़ियों में मनुष्य के पहुँचे की धमनी नाड़ी मुख्य है। उसको वैद्य चार अङ्गुलियों से मणिबन्ध के ऊपर रख कर परीक्षा करें। (आयुर्वेद शास्त्र में तीन अङ्गुलियों से नाड़ी की परीक्षा की जाती है, किन्तु युनानी हकीम चार दोषों को चार अङ्गुलियों से देखते हैं ॥ ५ ॥

पित्तविकृतौ नाड्याः गतिः—

यथैणगतिपर्यायस्तद्वदुत्प्लुत्य गच्छति ।
गिजाली गतिराख्याता पित्तकोपविकारतः ॥ ६ ॥

पित्तोविकार में नाड़ी की गति—जैसे मृग का बच्चा उछल-कूदकर चलता है; उस प्रकार गति वाली नाड़ी को गिजाली कहते हैं। ऐसी नाड़ी की गति पित्त की विकृति से होती है अर्थात् पित्त दोष को यूनानी में "गिजाली" कहते हैं ॥ ६ ॥

वातविकृतौ नाड्याः गतिः—

तरङ्गनाम मौजः स्यात् मौजी गतिरितीरिता ।
निवेदयति वर्ष्मस्थं वायोरुष्माणमेव च ॥ ७ ॥

वातविकार में नाड़ी की गति—यूनानी में जल की लहर को मौज कहते हैं उस मौज सदृशनाड़ी की गति को मौजी कहते हैं। यह शरीरस्थ वायु की उष्णता को बताती है ॥ ७ ॥

कफविकृतौ नाड्याः गतिः—

दूदः स्यात्कृमि पर्यायो दूदी तस्य गतिः स्मृता ।
श्लेष्माणसंचयं चामं प्रकटीकुरुते हि सा ॥ ८ ॥

कफ विकार में नाड़ी की गति—दूद (कनसलाई आदि) कृमि का नाम है। इसका गति को सदृश गति को दूदी कहते हैं। यह नाड़ी की दूदी गति कफ के सञ्चय एवं आम दोष को प्रकट करती है ॥ ८ ॥

सद्यः म्रियमाणस्य नाड्याः लक्षणम्—

नमलिपपीलिकामोर नमली तद्गतिः स्मृता ।
यस्य नाडी तथा गच्छेन्मृतिस्तस्याशु निर्दिशेत् ॥ ६ ॥

शीघ्र मरने वाले व्यक्तिकी नाड़ी का लक्षण—नमल् चींटी (कीड़ी) तथा मोर का नाम है । अतः इनके समान गति को नमली गति कहते हैं । जिस पुरुष की नाड़ी मोर तथा चींटी की तरह चले वह प्राणी जल्दी ही मर जाता है ॥९॥

शोथरोगिणो नाड्याः लक्षणम्—

असिपत्रस्य पर्यायो मिन्शार इति कीर्तितः ।
यथास्यात्तत्क्रमः काष्ठे मिन्शारी सा गतिर्भवेत ।
तद्गतिं धमनी धत्ते बाह्यान्तः शोथरोगिणः ॥ १० ॥

शोथ रोगी की नाड़ी का लक्षण—यूनानी में आरे का पर्याय मिन्शार है । उसकी काष्ठ में जिस क्रम से गति होती है उस प्रकार की नाड़ी की गति को मिन्शारी गति कहते हैं । इस प्रकार नाड़ी की गति बाहर तथा अन्दर शोथ के रोगी की होती है ॥ १० ॥

पित्त-कफ विकृतौ नाड्याः लक्षणम्—

जम्बुलफारनाम्नो या गतिर्मूषकपूच्छवत् ।
पित्तश्लेष्मप्रकोपेण धमन्याः सम्भवेत्किल ॥ ११ ॥

पित्त-कफ विकार में नाड़ी की गति—जो नाड़ी की गति मूषक के पूँछ के समान होती है उसको जम्बुलफार नामक नाड़ी की गति कहते हैं । यह नाड़ी की गति पित्त-कफ के प्रकोप से होती है ॥ ११ ॥

बलक्षये नाड्याः गतिः—

माली शलाका सदृशी सूक्ष्मा धीरा बलात्ययात् ।
गत्याघातद्वयं यस्यामधस्तादंगुलिर्भवेत् ॥
जलफितरत्तत्स्मृता पित्तश्लेष्मदग्धप्रबोधिनी ॥ १२–१३ ॥

बल के क्षीण होने पर नाड़ी की गति—जो नाड़ी की गति सलाई सदृश अत्यन्त सूक्ष्म तथा धीर गामिनी होती है उसे माली कहते हैं । ऐसी गति बल के क्षीण होने पर होती है । जो मध्य अङ्गुली के नीचे दो बार आघात करती हुई

प्रतीत होती है उसको जुलफितरत नाड़ी की गति कहते हैं। यह प्रकुपित पित्त-कफ को प्रकट करती है ॥ १२–१३ ॥

मलबन्धज्ञापिकाया वात-नाड्याः लक्षणम्—

मुर्त्तइश स्फुरन्ती या गतिः कोष्ठस्य रूक्षताम् ।
विड्ग्रहत्वं च सौदावी विचारान् ज्ञापयत्यपि ॥ १४ ॥

मलबन्ध (कब्ज) को बताने वाली वात (सौदा) नाड़ी का लक्षण—जिस नाड़ी के प्रस्फुरण से कोठे की रूक्षता प्रकट हो उसको मुर्त्तइश कहते हैं। इससे मलबन्ध (कब्ज) का ज्ञान होता है। इस प्रकार के लक्षण वाली नाड़ी की गति को सौदावी कहते हैं ॥ १४ ॥

पित्तवातविकृतौ नाड्याः लक्षणम्—

इर्तिशा कम्पपर्यायस्तद्विशिष्टा तु या भवेत् ।
मुर्तइश नाम साऽऽज्ञेया सफरासौदाविकारयुत् ॥ १५ ॥

पित्त-वात (सफरा-सौदा) विकार में नाड़ी का लक्षण—यूनानी में कम्पन को इर्तिशा कहते हैं। उसके समान जो नाड़ी की गति हो उसको इर्तिशा या मुर्तइश गति कहते हैं। इस प्रकार नाड़ी की गति सफरा (पित्त) तथा सौदा की विकृति होने पर होती है ॥ १५ ॥

रक्तस्य कफस्य च विकृतौ नाड्याः लक्षणम्—

मुम्तिला पूर्ति तूदिष्टाऽसुजोऽस्यां मुम्तिली तु सा ।
तमः कफादधोगा या मुन्खफिज सा प्रकीर्तिता ॥ १६ ॥

रक्त तथा कफ के विकार में नाड़ी की गति का लक्षण—यूननी में परिपूर्ण (भरे हुए) को मुम्तिला कहते हैं। अतः जिस नाड़ी की गति से रक्त की परिपूर्णता प्रतीत होती है उस नाड़ी की गति को "मुम्तली" गति कहते हैं। जो नाड़ी तमोगुण या कफ से अधोभाग में गमन करे उसको "मुन्खफिज" कहते हैं ॥ १६ ॥

पित्तप्रकोप जन्याः नाड्याः लक्षणम्—

ऊर्ध्वमुत्प्लुत्य या गच्छेत्किञ्चिन्वायुप्रकोपतः ।
शाहेबुलन्द सा ख्याता धमनीसंपरीक्षकैः ॥ १७ ॥

पित्तप्रकोपजन्य नाड़ी का लक्षण—जो नाड़ी कुछ पित्त के प्रकोप से उछल-कूदकर ऊपर को चले उसको नाड़ी विज्ञाता वैद्य शाहेबुलन्द कहते हैं ॥ १७ ॥

दराज नाड्याः लक्षणम्—

चतुरङ्गुलिसंस्थानादपि दीर्घा तवील सा।
दराज इति पर्यायस्तस्या एव निपातितः॥ १८॥

दराज नाड़ी का लक्षण—जो नाड़ी चार अंगुल से भी लम्बी हो उसको तवीलसा कहते हैं। उस नाड़ी का दूसरा नाम दराज है॥ १८॥

कसीरामीकारीजानां नाडीनां लक्षणम्—

परिमाणान्न्यून रूपा सा कसीर समीरिता।
अमीक निम्नगा या च अरीज आयती स्मृता॥ १९॥

कसीर, अमीक तथा अरीज नाड़ी का लक्षण—जो नाड़ी का परिमाण कहा गया है उससे कम हो तो उसको कसीर, अधोगामिनी नाड़ी को अमीक तथा चौड़ी नाड़ी को अरीज कहते हैं॥ १९॥

दोषाणां सबलनिर्बलादिनिरूपणम्—

यथा गतिस्तु दोषाणां धत्ते प्राबयत्वहीनते।
गलवे कसूर अरक्लात तारतम्येन निर्दिशेत्॥ २०॥

दोषों की सबल-निर्बल आदि नाड़ी का निरूपण—दोषों (वात, पित्त, कफ या सफरा, सौदा, बलगम तथा खून) की गति के अनुसार नाड़ी को बली तथा निर्बल समझना चाहिए। इसके बलो तथा निर्बल आदि नाड़ियों को गलवे कमर तथा अरक्लात तारतम्य से कहना चाहिए॥ २०॥

स्वस्थस्य निर्दोषनाड्याः निरूपणम्—

वाकअफिलवस्त निर्दोषः स्वस्थस्य परिकीर्तिता।
इति संक्षेपतो नाडीपरीक्षा कथितां बुधैः॥
विस्तरस्तु मया प्रोक्तो भाषायां जनहेतवे॥ २१॥

स्वस्थ व्यक्ति की निर्दोष नाड़ी का निरूपण—स्वस्थ व्यक्ति के निर्दोष नाड़ी को "वाकि अफिलवस्त" कहते हैं। यह यूनानी मतानुसार संक्षेप में नाड़ी परीक्षा मैंने कही है। जनता के हित के लिये भाषा में विस्तारपूर्वक कहा गया है॥२१॥

यूनानी मतानुसार नाड़ी गति का स्वरूप—

१ गिजाली (मृग)—

मृग के बच्चे के समान जो उछलता-कूदता (चञ्चल) चले उसको "गिजाली" कहते हैं। यह नब्ज की गति पित्ताधिक्य (सफरा) से होती है।

२ मौजी (तरंग)—

जो नाड़ी की गति जल की "तरंग" के समान गमन करे अर्थात् टेढ़ी-मेढ़ी चले उसको मौजी गति कहते हैं। यह गति तरी को सूचित करती है और वाताधिक्य (सौदा) से होती है।

३ दूदी (कृमि)—

जो नाड़ी कीडे के समान मन्द-मन्द गमन करे वह कफ (बलगम्) तथा आम दोष की अधिकता से होती है। इस नाड़ी की गति को "दूदी" कहते हैं।

४ मिन्शारी (आरा)—

जिस नाड़ी की गति लकड़ी पर आरा चलने की तरह खारदार प्रतीत होती है वह बाहर-भीतर सूजन को सूचित करती है। इसको "मिन्शारी" गति कहते हैं।

५ जनबुलफार (मूसे की पूँछ)—

जो नाड़ी की गती चूहे की पूँछ को तरह गमन करे उसको "जन-बुलफार" गति कहते हैं और यह वात-पित्त के प्रकोप से होती है।

६ नुम्ली (मोर-चींटी)—

जो नाड़ी की गति चींटी और मोर की गति के समान हो उसे "नुम्ली" गति कहते हैं। ऐसी नाड़ी की गति मुमुर्षु (मरनेवाले) की होती है।

७ मतली (सलाई)—

जो नाड़ी सलाई के समान दोनों ओर पतली तथा मध्य में मोटी होकर गमन करती है उसको मतली गति कहते हैं। यह दुर्बलता को सूचित करती है।

८ मतरकी (हथोड़ा)—

जो नाड़ी की गति हथोड़े के समान अङ्गुलियों को बार-बार चोट के समान प्रतीत हो उस गति को "मतरकी" गति कहते हैं। यह अत्यन्त गर्मी का सूचक है।

९ जुल्फितरत (शा. क्रा. समान)—

जो नाड़ी चलते-चलते रुक जाय उसको "जुल्फितरत" कहते हैं। यह दुर्बलता को सूचित करती है। यह नाड़ी की गति प्रायः शोक के समय होती है।

१० वाकअफिल्वस्त (विषम टंकोर देना)—

जो नाड़ी की गति फड़कन के समय से पूर्व ही फड़क उठे उसे "वाकअफिल्वस्त" गति कहते हैं। यह गति श्वासाधिक्य में होती है। किसी-किसी का मत है कि यह गति निर्दोष नाड़ी का सूचक है।

दोषाणां चतुर्विधित्वनिरूपणम्—

दोषः खिल्त इति प्रोक्तः स चतुर्धा निरूप्यते।
सौदा सफरा तथा वल्गम तूरीये खून उच्यते ॥ २२ ॥

चार प्रकार के दोषों का निरूपण—यूनानी में दोष शब्द को "खिल्त" कहते हैं। वह चार प्रकार का होता है। जैसे, सौदा, सफरा, वल्गम तथा खून ॥२२॥

चतुर्विध दोषाणां स्वरुपम्—

तत्र सौदा धरातत्त्वं रूक्षं शीतस्वभावतः।
पित्तमग्नेः स्वरूपं तु सफरा रूक्षमुष्णकम् ॥ २३ ॥
वल्गमवारिरूपं स्यात्सः कफः स्निग्धशीतलः।
अस्रं वायुः खून इति स्निग्धोष्णं तेषु तद्वरम् ॥ २४ ॥

आकाश-वायु	तेजस् (अग्नि)	अप्-पृथ्वी	वायु-तेज
|	|	|	|
वात	पित्त	कफ	खून

चार प्रकार के दोषों का स्वरूप—प्रत्येक दोष में दो-दो गुण होते हैं। सौदा (वात) में पृथ्वी तत्त्व अधिक है अतः सौदा स्वभाव से ही रूक्ष तथा शीत होता

है। सफरा (पित्त) में अग्नि तत्त्व विशेष है। सफरा (पित्त) उष्ण एवं रूक्ष होता है। बल्गम (कफ) में जल तत्त्व अधिक होता है; अतः बल्गम (कफ) में स्निग्ध तथा शीतल गुण होता है। खून (रुधिर) में वायु तत्त्व अधिक होने से स्निग्ध एवं उष्ण गुण होता है; अतः अन्य दोषों की अपेक्षा यह खून श्रेष्ठ कहा गया है ॥ २३–२४ ॥

इम्बसात (बाह्यगति) के भेद।

१. तवील (दीर्घाकार)

मोतदिल (समान)—

यदि नाड़ी चार अङ्गुल से थोड़ा भी न्यूनाधिक न हो, किन्तु सम हो तो सरदी-गरमी समान समझना चाहिए।

कसीर (ह्रस्व)—

नाड़ी चार अङ्गुल से कम हो तो सरदी का लक्षण समझना चाहिए। ऐसा पुरुष शीतप्रकृति का होता है।

तवील (दीर्घ)—

जो नाड़ी चार अङ्गुल से अधिक लम्बी हो तो गरमी का लक्षण समझना चाहिए। ऐसा पुरुष उष्णप्रकृति का होता है।

२. अरीज (स्थूलाकार)

अरीज (स्थूल)—

यदि नाड़ी तर्जनी अङ्गुली से लेकर कनिष्ठिका पर्यन्त स्थूल प्रतीत हो तो वह तर अर्थात् रक्त और कफ से होती है।

दैयक वाजीक (कृश)—

जो नाड़ी पतली प्रतीत हो उसको कृश कहते हैं। ऐसी नाड़ी वात तथा पित्त प्रकोप में होती है।

मोतदिल (समान)—

जो नाड़ी समान हो अर्थात् न कृश हो और न स्थूल हो तो उसमें शीतोष्ण समान होता है।

३. उमक (वहिर्गत्याकार)

मुशरीक उमक (वहिर्गत)—

जो नाड़ी अत्यन्त उछलकर अंगुलियों को स्पर्श करे तो उसमें उष्णता की अधिकता होती है।

मुंनखफ़िज (अन्तर्गत)—

जो नाड़ी हद्द से कम ऊँची उठे अर्थात् धीरे से अंगुलियों को स्पर्श करे:तो सरदी का द्योत है और गरमी की कमी होती है।

मोतदिल (समान)—

जो नाड़ी न बहुत उभरी हुई हो और न बिलकुल दबी हुई हो किन्तु समान हो तो उसमें गरमी होती है।

यूनानी मत के अनुसार नाड़ी की परीक्षा

यूनानी भाषा में नाड़ी को नब्ज कहते हैं। नब्ज का अर्थ धमनी का तड़फना है। वह तड़फन प्रत्येक की प्रकृति-देश, काल तथा अवस्था-भेद से समान नहीं होती, कुछ न कुछ भेद रहता ही है। एक बार स्वास्थावस्था की नाड़ी देखने के बाद रोगावस्था की नाड़ी देखी जाय तो उसकी नाड़ी का यथार्थ ज्ञान हो जाता है कि स्वस्थावस्था की नाड़ी से रुग्णावस्था की नाड़ी में कितना अन्तर है। नाड़ी-परीक्षा करने और नाड़ी-परीक्षा करानेवालों को सावधान एवं निश्चिन्त होने के बाद ही नाड़ी-परीक्षा प्रारम्भ करनी चाहिए। नाड़ी दिखाते समय किसी वस्तु का सहारा नहीं लेना चाहिए और न किसी वस्तु को पकड़े ही रहना चाहिए। यदि हाथ में पट्टी आदि बँधी हो तो खोल देना चाहिए। प्राचीन नाड़ीवेत्ताओं का यह विचार रहा है कि कनपटी, गुदा, टकने आदि आदि अनेक स्थानों की नाड़ी देख कर रोग का ज्ञान किया जा सकता है किन्तु उन स्थानों की नाड़ी मांसल प्रदेश में होने के कारण स्पष्ट ज्ञान करना कठिन हो जाता है। अतः नाड़ी देखने का समुचित स्थान मणिबन्ध (कलाई) ही होती है क्योंकि यहाँ की नाड़ी (धमनी) अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होती है। स्त्रियों की नाड़ी देखने की एक समस्या भी बन जाती है क्योंकि हाथ की नाड़ी के अतिरिक्त

अन्य अङ्गों की नाड़ी लज्जा के कारण नहीं देखी जा सकती। हाथ दिखाने में कोई संकोच नहीं होता है।

यूनानी में दो प्रकार के नाड़ी का वर्णन किया गया है—

(१) इम्बसात (बाह्यगति) : इम्बसात उस गति को कहते हैं जो फड़कन के साथ बाहर आकर अङ्गुलियोंको स्पर्श करती है। जो पहले बतायी जा चुकी है।

(२) इन्क़िबाज (आभ्यन्तरगति) : इन्क़िबाज की गति में नाड़ी अङ्गुलियों को स्पर्श कर अन्दर की ओर प्रवेश करती हुई प्रतीत होती है।

यूनानी चिकित्सा-पद्धति में दोष को खिल्त कहते हैं और वह चार प्रकार का होता है। सौदा (वात), सफरा (पित्त), बल्गम (कफ) तथा खून। आयुर्वेद में तीन ही दोष मानते हैं उनके मत में खून दूष्य होता है। इसके ऊपर आयुर्वेद में बहुत विचार के बाद समाधान दूष्य पक्ष में ही हुआ है।

प्रत्येक दोष के दो-दो गुण होते हैं। सौदा (वात) में पृथ्वी तत्त्व अधिक होने के कारण स्वभाव से ही रुक्ष तथा शीतल गुण होते हैं। सफरा (पित्त) में अग्नितत्त्व अधिक होने के कारण रुक्ष तथा उष्ण गुण होते हैं। बल्गम (कफ) में जल तत्त्व के अधिक होने से स्निग्ध तथा शीतल गुण होते हैं। खून में वायु तत्त्व अधिक होने से स्निग्ध एवं उष्णगुण वाला होता है। अतः अन्य दोषों की अपेक्षा खून श्रेष्ठ होता है।

सौदा (वात) की नाड़ी ह्रस्व व पतली होती है और उसमें शीत तथा रुक्ष गुण होता है। सफरा (पित्त) की नाड़ी दीर्घ और पतली होती है तथा उसमें गरम और खुश्क गुण होता है। बल्गम (कफ) की नाड़ी ह्रस्व तथा मोटी होती है और उसमें शीत तथा तर गुण होता है। खून की नाड़ी दीर्घ व स्थूल होती है और उसमें गरमतर गुण होता है।

नाड़ी का बलाबल, विलम्ब, आकृति, प्रमाण, स्पर्श, साध्यासाध्यता एवं स्थिति के अनुसार नाड़ी का लक्षण—

१. नाड़ी का बलाबल :

सबल (शीघ्र धारिणी)—

जो नाड़ी अंगुलियों के मांस में वेग-जोर से धक्का देकर ऊँची उठ जावे तो हृदय को प्रबल समझे।

दुर्बल (मन्द चारिणी)—

यदि नाड़ी अंगुलियों को स्पर्श कर दब जाय तो हृदय को दुर्बल समझे।

मोतदिल (समता)—

जो नाड़ी न बहुत जोर से चले और न अत्यन्त धीरे-धीरे चले तो हृदय स्वस्थ समझे।

२. नाड़ी का बिलम्ब होना :

सरी (समता)—

जो नाड़ी शीघ्र आवागमन करे तो शरीर में अधिक गरमी का द्योतक है।

वती (मन्द चारिणी)—

जो नाड़ी धीरे-धीरे चले वह शरीर में अधिक सरदी का द्योतक है।

मोअज्जिल (शीघ्र चारिणी)—

जो नाड़ी मध्यम चाल से चले वह सरदी-गरमी दोनों की समानता का द्योतक है।

३. आकृति :

नरम (मृदु)—

जो नाड़ी दबाने से आसानी से दब जाय उसको तर-स्निग्ध कहते हैं। फारसी में "लीन" कहते हैं।

सक्ख्त (कठिन)—

जो नाड़ी दबाने से न दबे वह खुष्क होती है। फारसी में उसे "सख्त" कहते हैं।

मोतदिल (सम)—

जिसमें मध्यम गुण हो अर्थात् न मृदु हो और न कठोर हो उसको "मोतदिल" कहते हैं।

४. प्रमाण :

इतमला (रुधिर पूर्ण)—

जो नाड़ी मोटी तथा शीघ्र चलती हो उसको रक्तपूर्ण समझे।

खाली (स्वल्प रुधिर)—

जो नाड़ी खाली होती है वह मन्द और पतली होती है। उसमें थोड़ी रुधिर होती है।

मोतदिल (समता)—

जब नाड़ी न भरी हो और न खाली हो तो समान रक्त समझे।

५. स्पर्श :

गरम (उष्ण)—

जिस समय नाड़ी का स्पर्श गरम प्रतीत हो तो रक्त में ज्वर या गरमी समझे।

सरद (शीत)—

जिस समय नाड़ी में शीतलता प्रतीत हो तो रक्त में शीतलता समझे।

मोतदिल (सम)—

जिस समय नाड़ी में शीत-उष्ण समान हों तो शीतोष्ण समान समझे।

६. साध्यासाध्यता :

उस्तवा (पूर्व सदृश)—

जो नाड़ी कम से कम पैंतिस बार फड़क कर ठहरे तो साध्य समझे।

एख्तला (विपरीत)—

जो नाड़ी पैंतिस बार फड़कने में कई बार टूट जाय तो असाध्य समझे।

मोतदिल (समता)—

जो नाड़ी अनेक बार न टूट कर एक-दो बार टूटे उसे साध्य समझे।

७. स्थिति :

मुतवतिर (अत्यन्त)—

जो नाड़ी अंगुलियों को स्पर्श कर शीघ्र अन्दर चली जाय तो वह निर्बल नाड़ी है।

मुतफावित (धैर्य)—

जो अंगुलियों को कुछ समय तक स्पर्श करे उसे बलवान् नाड़ी समझे।

मोतदिल (समता)—

जो नाड़ी समान रूप से अङ्गुलियों को स्पर्श करे उसे स्वस्थ नाड़ी समझे।

यूनानी मत से नाड़ी-विज्ञान डॉ॰ इन्द्रदेव त्रिपाठी विरचित

'विद्योतिनी' भाषा-टीका समाप्त।

—oo:o:oo—

परिशिष्ट-२

पाश्चात्त्य मत के अनुसार नाड़ी-परीक्षा का स्वरूप—

अंग्रेजी में नाड़ी को पल्स (Pulse) कहते हैं यह दो प्रकार की होती है। परोक्ष तथा अपरोक्ष नाड़ी। जो नाड़ी देखने वाले की अङ्गुलियों को स्पर्श न करे उसे परोक्ष और जो स्पर्श करे उसे अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) नाड़ी कहते हैं।

खड़े होने की अपेक्षा बैठने और बैठने की अपेक्षा सोने पर नाड़ी की गति घटती है। उसी प्रकार सायं-प्रातः नाड़ी की गति बढ़ जाती है और निद्रा में नाड़ी की गति घट जाती है।

अफीम, मद्य आदि गरम वस्तु के खाने पर नाड़ी की संख्या बढ़ जाती है। अत्यन्त शीतल वस्तु के खाने पर नाड़ी की संख्या न्यून हो जाती है। भोजन के समय नाड़ी का वेग मन्द हो जाती है।

पाश्चात्यमतेन वेगसंख्यातिक्रान्तनाड्याः नाम कथनम्—

आनन्दातितरावस्था स्वानन्दापेक्षया गतेः।
वेगसंख्यावर्द्धते सा नाडीफ्रीकेंटशब्दिता ॥ १ ॥

पाश्चात्य मत से अधिक घेरा-गति संख्या वाली नाड़ी का नाम—सामान्य नाड़ी की अपेक्षा नाड़ी की संख्या अधिक वेगवान् हो तो फ्रीकेंट" (Frequent) कहते हैं। अर्थात् सामान्य नाड़ी की गति संख्या निश्चित है उससे अधिक होने पर "फ्रीकेंट" की संज्ञा होती है ॥ १ ॥

वेगसंख्यान्यूननाड्याः नाम कथनम्—

आनन्दातितरावस्था स्वानन्दापेक्षया गतेः।
वेगसंख्या ह्रसति सा नाडीन्फ्रीकेंटशब्दिता ॥ २ ॥

कम गति संख्या वाली नाड़ी का नाम—सामान्य नाड़ी संख्या की अपेक्षा स्पन्दन संख्या कम हो तो उस मन्द चारिणी नाड़ी को इन्फ्रीकेंट (Infrequent) कहते हैं ॥ २ ॥

सम संख्याक नाड्याः नाम कथनम्—

चिरकालधृतायांञ्च नाड्यां संख्या न वर्द्धते।
न वा ह्रसति वेगस्य सा च रेग्यूलराभिधा ॥ ३ ॥

सामान्य गति संख्या को बताने वाली नाड़ी का नाम—जब नाड़ी पर बहुत देर तक हाथ रखने पर भी कुछ न्यूनाधिक्य प्रतीत न हो उस नाड़ी को रेग्यूलर (Reguler) कहते हैं ॥ ३ ॥

विषमसंख्याकनाड्याः नाम कथनम्—

चिरकालधृतायांच नाड्यां संख्याविवर्द्धते।
मन्दी भवति चावस्था सेरेंग्यूलरशब्दिता ॥ ४ ॥

न्यूनाधिक गति संख्या को बताने वाली नाड़ी का नाम—बहुत देर तक नाड़ी पर हाथ रखने से नाड़ी की संख्या घटती-बढ़ती रहे तो उस नाड़ी को इर्रेग्यूलर (Irreguler) कहते हैं ॥ ४ ॥

हृद्रोगज्ञापिकायाः नाड्याः नाम कथनम्—

सकृदंगुलिसंस्पर्शादन्तर्धानं तु गच्छति।
इन्टर्मिटेंन्टाभिधा साऽसृक्कफाशयदूषिणी ॥ ५ ॥

हृदय रोग को बताने वाली नाड़ी की नाम—जो नाड़ी एक बार अङ्गुली का स्पर्श कर छिप जाय वह रक्त एवं कफाशय को दूषित करनेवाली एवं हृदय सम्बन्धी रोग को उत्पन्न करनेवाली है। इसको इन्टर्मिटेन्ट (Intermittent) कहते हैं ॥ ५ ॥

रक्तपूर्णनाड्याः नाम कथनम्—

यदारक्तेन पूर्णत्वमापन्ना नाडीका भवेत्।
तथा फुलशब्दविख्याताऽथवा लार्जेति विश्रुता ॥ ६ ॥

रक्तपूर्ण नाड़ी का नाम—जो नाड़ी रक्त से परिपूर्ण होती है उस नाड़ी को फुल् या लार्ज (Ful or large) कहते हैं ॥ ६ ॥

हृदि रक्ताल्पनाड्याः नाम कथनम्—

यस्यां हृत्कमलोच्छ्वासाद् रक्तमल्पं वहेत् सा।
रिक्ता नाडी स्मालसंज्ञा समाख्याताङ्गलभाषया ॥ ७ ॥

हृदय में थोड़े रक्त को बताने वाली नाड़ी का नाम—जिस समय हृदय में रक्त अल्प होता है उस समय जो नाड़ी का स्पन्दन होता है उस रिक्त नाड़ी को स्माल (Small) नाड़ी कहते हैं ॥ ७ ॥

क्षीणनाड्याः नाम कथनम्—

या वै गुणवदातन्वी नाडी क्षीणत्वशंसिनी ।
रक्ताल्पतां द्योतयन्ती सा थ्रेडीपल्ससंज्ञिता ॥ ८ ॥

क्षीण नाड़ी का नाम—जो नाड़ी धागे के समान बहुत सूक्ष्म प्रतीत हो वह क्षीणता एवं रक्ताल्पता को प्रकाशित करने वाली थ्रेडीपल्स (Thready Pulse) कहलाती है ॥ ८ ॥

कठिनगतिनाड्याः नाम कथनम्—

अङ्गुलीभिर्यदा नाडी पीडितापि न नम्रताम् ।
व्रजेत्तदातिरूक्षत्वद्योतिनी हार्डशब्दिता ॥ ९ ॥

कठिन गति वाली नाड़ी का नाम—जो नाड़ी अंगुलियों से दबाने पर भी मृदु न हो उस रूक्षता को प्रकट करने वाली नाड़ी को हार्ड (Hard) नाड़ी कहते हैं ॥ ९ ॥

मृदुगतिनाड्याः नाम कथनम्—

अङ्गुलिभिर्यदा नाडी पीडिता नम्रता व्रजेत् ।
सार्द्रत्वद्योतिनी मृद्वी साफ्टशब्देन शब्दिता ॥ १० ॥

मृदुगति वाली नाड़ी का नाम—जब नाड़ी अंगुलियों से दबाने पर दब जाय उस शीतलता तो प्रकट करने वाली नाड़ी को मृदु साफ्ट (Saft) नाड़ी कहते हैं ॥ १० ॥

शीघ्रगनाड्याः नाम कथनम्—

प्रतिस्पन्दं शीघ्रतायां संख्या यस्या न वर्द्धते ।
सकृच्छैघ्र्यधरा तूर्णगा नाडी क्विकशब्दिता ॥ ११ ॥

शीघ्र चलने वाली नाड़ी का नाम—जिस नाड़ी का स्पन्दन शीघ्र होते हुए भी संख्या न बढ़े किन्तु एक बार ही शीघ्रता करे उस शीघ्र गामिनी नाड़ी को क्वीक (Quick) नाड़ी कहते हैं । यह दुर्बलता का द्योतक है ॥ ११ ॥

मन्दगति नाड्याः नाम कथनम्—

यस्या मन्दगतिर्या च नाडी पूर्णा भवेत्तु सा।
स्लोशब्दशब्दिता ज्ञेया रक्तकोपप्रकाशिनी ॥ १२ ॥

मन्द गति वाली नाड़ी का नाम—जो नाड़ी मन्द गति एवं परिपूर्ण हो वह रक्त के प्रकोप को प्रकाशित करती है उसे स्लो (Slow) नाड़ी कहते हैं ॥ १२ ॥

इति पाश्चात्यमतेन नाडीपरीक्षा समाप्ता।

पाश्चात्य मतानुसार नाड़ी—

संस्कृत नाम	अंग्रेजी नाम	
१ शीघ्र चारिणी	Freuquent	फ्रीक्वेन्ट
२ मन्द-गामिनी	Infreuquent	इन्फ्रीक्वेन्ट
३ सावधानता सूचक	Regulars	रेग्यूलर
४ असावधानता सूचक	Irregulars	इरेंग्यूलर
५ सांतरिक	Intermittent	इन्टर्मीटिन्ट
६ परिपूर्ण	Full या Large	फुल या लार्ज
७ रिक्त	Small	स्माल
८ सूक्ष्मता	Thready pulse	थ्रेडी पल्स
९ कठिन	Hard	हार्ड
१० मृदु	Soft	साफ्ट
११ शीघ्र गामिनी	Quick	क्वीक
१२ धीर गामिनी	Slow	स्लो

छोटे बालक की नाड़ी की गति अधिक होती है। पुनः जैसे-जैसे अवस्था बढ़ती है वैसे-वैसे नाड़ी की गति कम होने लगती है तथा वृद्धावस्था में नाड़ी की गति कुछ बढ़ जाती है। मध्यम श्रेणी के युवा पुरूषों की नाड़ी आरोग्यावस्था में कुछ भरी हुई सी होती है। फिर भी अवस्था एवं स्वभाव भेद से नाड़ी की गति में भिन्नता पाई जाती है।

अवस्था के अनुसार नाड़ी की गति—

अवस्था		गति प्रमाण
१४०	प्रति मिनट	सद्यः प्रसूत बालक
१२० से १३० तक	,,	दूध पीने वाले बालक
१००	,,	५ वर्ष से ६ वर्ष तक के बालक
९०	,,	१५ वर्ष के नव युवक
७० से ७५ तक	,,	३५ वर्ष तक
७०	,,	३५ से ७० तक वृद्धावस्था में
७५ से ८०	,,	अति वृद्धावस्था में

इस परिसंख्या में स्थिति के अनुसार न्यूनाधिक होता रहता है।

पाश्चात्य मत से नाड़ी-विज्ञान की डॉ० श्री इन्द्रदेव त्रिपाठी विरचित 'विद्योतिनी' भाषा टीका समाप्त।



(जयकृष्णदास आयुर्वेद ग्रन्थमाला ३४)

सुश्रुतसंहिता

(डल्हणाचार्यकृत निबन्धसंग्रह तथा गयदासकृत न्यायचन्द्रिका सहित)

आरम्भ से चिकित्सास्थान नवम अध्याय तक
वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
तथा शेष नारायणराम आचार्य संशोधित काव्यतीर्थ
भूमिका—आचार्य प्रियव्रत शर्मा

सुश्रुतसंहिता आयुर्वेद का एक उपजीव्य आधारग्रन्थ है। इस पर डल्हणाचार्यकृत निबन्धसंग्रह व्याख्या सर्वतः प्रामाणिक तथा प्रचलित मानी जाती है। गयदासकृत न्यायचन्द्रिका भी महत्त्वपूर्ण व्याख्या है। किन्तु चिरकाल से दोनों व्याख्यायें अप्राप्य हो गई थीं जिससे सुधीसमाज को बड़ी कठिनाई का अनुभव करना पड़ रहा था। प्रसन्नता का विषय है कि यह चिरप्रतीक्षित संस्करण जिज्ञासुजनों की कठिनाई को दूर करने के लिए प्रकाशित किया गया है। आशा है, विद्वत्समाज इसे अपना कर प्राचीन ज्ञान के प्रचार-प्रसार में सहायक होगा। कपड़ा जिल्द (१९८०) २००—००

(Jaikrishnadas Ayurveda Series 42)

CLINICAL METHODS IN ĀYURVEDA

by

Dr. K. R. SRIKANTA MURTHY

The book aims at a judicious blend of ancient and modern information on this important subject. Modern graduate and postgraduate students of Āyurveda will get from this book sufficient, precise and up-to-date knowledge about the examination of the patient. The content is divided into 20 chapters dealing with 'vyādhi samprāpti', 'parīkṣā krama', 'prakṛti parīkṣā', 'prāṇavaha srota', 'annavahasrota', 'purīṣavaha srota', 'udakavahasrota', mūtravaha, svedavaha, rasavaha, raktavaha, mānsavaha, medovaha, asthivaha, majjavaha, sukravaha, manovaha etc. srotas with appropriate sub-topics. (1983) 150-00

प्राप्तिस्थान—चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी-२२१००१